RNI : UPHIN/2009/30450

ISSN : 2319-2178

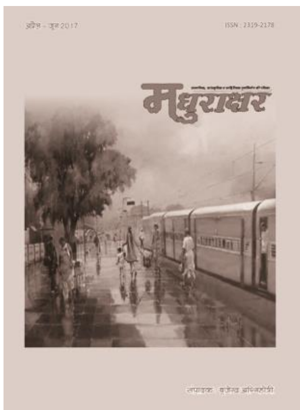

संपादक

डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

मधुराक्षर

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक पुनर्निर्माण की पत्रिका

“सारे संसार में फैल जाएगा,
एक न एक दिन मेरा संसार।
सभी मुझे करेंगे- दो-चार को छोड़
कभी न कभी प्यार।।”

–रघुवीर सहाय

अप्रैल–जून, 2017

वर्ष : 09, अंक : 02, पूर्णांक : 27

मूल्य

एक प्रति	: 30 रुपये

व्यक्तियों के लिए

वार्षिक	: 110 रुपये
त्रैवार्षिक	: 300 रुपये
आजीवन	: 2500 रुपये

संस्थाओं के लिए

वार्षिक	: 150 रुपये
त्रैवार्षिक	: 450 रुपये
आजीवन	: 5000 रुपये

विदेशों के लिए (हवाई डाक)

एक अंक	: 6 $
वार्षिक	: 24 $
आजीवन	: 300 $

सदस्यता शुल्क का भुगतान भारतीय स्टेट बैंक की किसी शाखा में 'मधुराक्षर' के बैंक खाता क्रमांक **31807644508** (IFS Code- SBIN0005396, MICR Code - 212002004) में करें। फतेहपुर से बाहर के चेकों व बाह्य-अन्तरण में बैंक शुल्क रुपये 60 अतिरिक्त जमा करें।

मधुराक्षर में प्रकाशित सभी लेखों पर संपादक की सहमति हो, यह आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री की सत्यता व मौलिकता हेतु लेखक स्वयं जिम्मेदार है। पत्रिका में प्रकाशित किसी भी लेख पर आपत्ति होने पर उसके विरुद्ध कार्यवाही केवल फतेहपुर न्यायालय में होगी।

मुद्रक, प्रकाशक एवं स्वामी बृजेन्द्र अग्निहोत्री द्वारा स्विफ्ट प्रिन्टर्स, 259, कटरा अब्दुलगनी, चौक, फतेहपुर से मुद्रित कराकर जिला कारागार, मनोहर नगर फतेहपुर (उ.प्र.) 212601 से प्रकाशित।

पूर्णतः अव्यावसायिक एवं अवैतनिक प्रकाशन

मधुराक्षर

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक पुनर्निर्माण की पत्रिका

(RNI : UPHIN/2009/30450, ISSN : 2319-2178)

अप्रैल–जून, 2017

संपादक
डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

सह संपादक
डॉ. प्रशांत द्विवेदी

प्रबंध संपादक
डॉ. ऋचा द्विवेदी

संपादकीय कार्यालय
जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) 212601

E-Mail : madhurakshar@gmail.com
Visit us : www.madhurakshar.blogspot.com
www.facebook.com/agniakshar

चलित वार्ता
+91 9918695656

एक नज़र में..

संपादकीय

बृजेन्द्र अग्निहोत्री : अपनी बात 04

कलम को नमन

अमृतलाल नागर : **धर्म–संकट (कहानी)** 23

मैथिलीशरण गुप्त : **नर न हो निराश करो मन को, आर्य (कविताएं** 29

कविताएं

शबनम शर्मा 31

शहंशाह आलम 32

पूजा अनिल 33

बृजेश कुमार अग्निहोत्री 'पेंटर' 34

डॉ. पारुल तोमर 35

अनुपमा सरकार 36

विकास द्विवेदी 37

कहानियां/लघुकथाएं

मीना पाण्डेय : **अम्मी** 06

अर्चना ठाकुर : **सपने को मर जाने दो** 09

डॉ. पूरन सिंह : **गुलाब** 13

कात्यायनी सिंह : **आरजू** 14

मनीषा गुप्ता : **प्रश्न** 18

डॉ. पूरन सिंह : **भविष्य–निधि** 20

सविता मिश्रा : **बाजी** 22

शोध लेख/आलेख

डॉ. हितेन्द्र कुमार मिश्र : **हिंदी साहित्येतिहास : पुनर्लेखन की आवश्यकता** 47

डॉ. ममता गंगवार : **स्वाधीन भारत के परिप्रेक्ष्य में महिलाओं की..........** 50

अम्बरीन आफताब : **साहित्यानुवाद में नवोन्मेष के प्रतीक– भारतेंदु** 53

अतुल कुमार पाण्डेय : **हिंदी उपन्यासों में पूर्वोत्तर के स्वर** 53

खरी–खरी

नीरज दइया : **कागज के दुश्मन** 44

कृति–चर्चा

सुनील कुमार : **समय–समाज से टकराहट का परिणाम– कसक** 45

चलते–चलते

डॉ. कृष्णा खत्री : **साहित्य में आस्था – बदलते स्वरूप** 59

संपादकीय

अपनी बात

एक बार महावीर स्वामी से उनके एक शिष्य ने प्रश्न किया– "गुरुदेव, मनुष्य के अधःपतन का क्या कारण है, और उससे अपनी मुक्ति के लिए क्या किया जाना चाहिए?"

महावीर स्वामी ने प्रतिप्रश्न किया– "यदि कमंडल भरा हुआ हो और उसमें पानी अधिक मात्रा में समा सकता हो तो क्या वह खाली अवस्था में नदी में छोड़ा जाने पर डूबेगा?"

"बिल्कुल नहीं!" –उस शिष्य ने उत्तर दिया.

"यदि उस कमंडल की दायीं ओर एक छिद्र हो तो क्या उस अवस्था में भी वह तैर सकता है?"

"नहीं, वह डूब जाएगा।"

''और यदि छिद्र बायीं ओर हो तो ?"

"छिद्र बायीं ओर हो या दायीं ओर, छिद्र कमंडल में कहीं भी हो, पानी उसमें प्रवेश करेगा और अंततः वह डूब जायेगा।"

"तो बस इतना समझ लो कि मानव–जीवन भी कमंडल के समान ही है। उसमें यदि दुर्गुणरूपी कोई छिद्र हुआ तो समझ लो कि वह टिकनेवाला नहीं है। लोभ, मोह, काम, क्रोध और अहंकार जैसे दुर्गुण मनुष्य के अधःपतन के कारणीभूत हो सकते हैं। इसलिए हमें सदैव यह स्मरण रखना चाहिए कि हमारे जीवनररूपी कमंडल में कोई दुर्गुण–रूपी छिद्र तो जन्म नहीं ले रहा है। यदि जन्म ले रहा है तो तत्क्षण उसका अंत अनिवार्य रूप से कर देना चाहिए। अगर हमने ऐसा कर लिया तो हमारा जीवन निष्कंटक रहेगा और हमें जीवन की प्रत्येक सफलता सहजता से प्राप्त होगी।"

मानव–जीवन के उपरोक्त दुर्गुणों से हिंदी साहित्य अछूता नहीं है। यश, पुरस्कार प्राप्त करने की लालसा, विद्वता का दंभ और उससे उपजा क्रोध रचनाकार की रचनाधर्मिता को धीरे–धीरे नष्ट करते जाते हैं। इन दुर्गुणों के वशीभूत होकर वह इस तथ्य को विस्मृत कर बैठता है कि इस ब्रह्माण्ड का प्रत्येक प्राणी अपने आप में विलक्षणता लिए हुए है। वह स्वयं को जन्मना बुद्धिमान और दूसरे व्यक्तियों को जन्मना मूर्ख समझने लगता है। उसे यह लगता है कि उसके द्वारा अपनाई जाने वाली व्यवहार–गणित से शेष संसार अनभिज्ञ है। परिणामस्वरूप उसका मानवीय और साहित्यिक अधःपतन प्रारंभ हो जाता है। इस समय साहित्यिक क्षेत्र में इस एक अलग तरह के प्राणी की संख्या में काफी तेजी से वृद्धि परिलक्षित हो रही है। हालांकि यह प्राणी बहुत पहले से विद्यमान है, किंतु इस समय इसकी संख्या बहुत तेजी से बढ़ रही है। यह साहित्यिक प्राणी आपके आसपास भी जरूर मौजूद होगा। इस प्राणी की सबसे बड़ी पहचान है– 'स्वयं की विद्वता स्वयं के मुख से करना' अर्थात् ऐसे व्यक्ति अपने 'मुँह मियां मिट्ठू' बनते देखे जा सकते हैं। स्वनाम–धन्य ऐसे व्यक्ति साहित्य और समाज का जितना अहित कर सकें, कम ही कहा जाएगा! ऐसे व्यक्तियों की जिह्वा पर 'इसने यह क्यों नहीं किया', 'उसने वह क्यों नहीं किया'.... जैसे प्रश्न हमेशा निवास करते हैं। दूसरों में खामियां ढूंढना इनकी विशेषता होती है। ऐसे महानुभावों को चाहिए कि दूसरों पर दोषारोपण करने के पूर्व स्व–मूल्यांकन अवश्य करें। दूसरों में खामियां ढूंढने के चक्कर में कहीं स्वयं खामियों का भंडार न बन जाएं। दूसरों का मूल्यांकन करने के पूर्व हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि 'देश, समाज और साहित्य को हम क्या और कितना दे रहे हैं?' हमारा आचरण ही हमारे व्यक्तित्व की वास्तविक पहचान होता है। केवल वक्तव्यों से समाज और साहित्य का भला नहीं हो सकता। अगर किसी व्यक्ति की 'कथनी' और 'करनी' में भेद है तो वह समाज और साहित्य के लिए किसी प्रकार से हितकारी सिद्ध नहीं हो सकता।

–बृजेन्द्र अग्निहोत्री

कहानी

अम्मी

✍ मीना पाण्डेय

युवा कहानीकार **मीना पाण्डेय** ने इस कहानी के माध्यम से सदियों से चली आ रहे उन सामाजिक-नियमों को संशोधित करने का प्रयास किया है। अगर व्यावहारिक जीवन में कोई गलती हो जाती है तो क्या उसमें हम सुधार नहीं करते! फिर जीवन को सरलता-सहजता प्रदान करने वाले रिश्तों में परिवर्तन हम क्यों नहीं स्वीकार कर पाते ? यह यक्ष प्रश्न समाज में रखने का प्रयत्न करते हुए कहानीकार ने स्त्री-पुरुष समानता के पक्ष को सामने रखा है।

संपर्क
एम-3, एमआईजी फ्लैट, सी-61,
वैष्णव अपार्टमेंट, शालीमार गार्डन-2,
साहिबाबाद, गाजियाबाद-201005

नजीर की आपा और दामाद आज सुबह–सुबह ही पहुँचे हैं। बाहर कमरे में सोफे पर धंसा दामाद पान की पीक मारने भीतर से बाहर आ–जा रहा है। नजीर की आपा यानि इफरोज की सास ने पानी पीते ही शिकायतों का सिलसिला शुरू कर दिया।

'मियां, शादीशुदा बेटी को मायके में ही बिठाकर रखना था तो निकाह ही न करते। तुम्हारा दामाद तो तैयार भी नहीं था आने के लिए। मैंने ही छोटे भाई की इज्जत का वास्ता दिया, तब जाकर तैयार हुआ है।'

नजीर आपा के आगे सर झुकाये बैठा रहा। आपा ने इफरोज के मिजाज की वो बखिया उधेड़ी की रसोईघर में चाय उबालती परवीन से रहा नहीं गया। टेबल पर चाय रखते–रखते उसने भी आपा को दो–चार सुना ही दी।

'ऐसा जुल्म तो न करें आपा! इफरोज आप की आँखों के आगे ही पली–बड़ी है। मजाल है जो किसी को कभी पलटकर जवाब तक दिया हो। मगर आपने तो उसमें कीड़े निकालने में कोई कसर नहीं छोड़ी। आप रिश्तों का तो कुछ लिहाज कर लेतीं।' परवीन का चेहरा गुस्से से लाल हो गया। अपनी बेकसूर बेटी पर जुल्म बर्दाश्त कर चुकी थी, पर अब और ज्यादती न होने देगी।

नजीर सहमी बेजुबान सी रहने वाली परवीन को यूं देख भी आज चुपचाप बैठा था। परवीन को गलत कहने का न आज उसके पास सहस था न तर्क। कितने विश्वास से अपनी गुणी–अल्लाह मियां की गाय सी बेटी भांजे से ब्याही थी। सोचा था कि ठाट–बाट मिलें न मिले, पर दो जून इज्जत से खायेगी फूफी के घर में। मगर आज बेटी का मुरझाया चेहरा और बहते आंसू एक अलग ही कहानी कह रहे थे। नजीर के भीतर उमड़े ज्वर को ही हर्फ दे दिए परवीन ने। बड़ी बहन का लिहाज ही था, जो अब तक वो चुपचाप सुनता रहा था। परवीन का ये रूप तो आपा ने भी नहीं देखा था। परवीन की खरी–खरी सुन आपा भी कुछ सकपका गयी और झूठी मुस्कान होंठो पर सजाती हुई

ISSN : 2319-2178

पान की पीक दबाये मुंह को कुछ उठाते हुए शकील गुर्राया– 'अम्मी तू चल रही है या मैं अकेला की चलता नजर आऊं। हजार दफे कहा था– आना होगा तो आ जाएगी, मगर तुझे तो शौक चढ़ा था बेइज्जती करवाने का।' न दुआ न सलाम, शकील जूते पटकता हुआ आगे-आगे निकला तो आपा भी नाक-भौं सिकोड़ती उसके पीछे हो ली।

अपने भाई की तरफ मुखातिब हुई— 'इफरोज मेरी बहु से पहले भांजी है। अपनी आँखों के सामने मैं उस पर जुल्म कैसे बर्दाश्त कर सकती हूँ। अब मर्दो का मिजाज तो तुम भी समझते ही हो। काम की चिंता, घर—बाहर की परेशानियों में बस नहीं चला तो बीवी पर ही चिल्ला लिया।'

'आपा बात चिल्लाने तक रहती तो भी ठीक था। मगर शकील तो इफरोज पर हाथ तक उठाता है।' —अब साहस जुटाकर नजीर भी बोला।

'मेरे भाई! कौन मर्द बीवी पर हाथ नहीं उठाता। क्या तूने नहीं उठाया कभी बीवी पर हाथ। ऐसी छोटी—छोटी बातों पर मसले पैदा करके घर नहीं बसा करते मियाँ!' आपा के जवाब ने नजीर की तो बोलती बंद कर दी, मगर परवीन आज चुप बैठने वाली नहीं थी।

सर से बार —बार ढुलता दुपट्टा सँभालते हुए बोली— 'आप के लिए होगी ये छोटी बात, मैंने जो सहा, सहा! मगर अपनी बेटी को जान बूझकर कुएं में डालने से तो में रही।'

परवीन की बात अभी खतम भी नहीं हुई थी कि पान की पीक दबाये मुंह को कुछ उठाते हुए शकील गुर्राया— 'अम्मी तू चल रही है या मैं अकेला की चलता नजर आऊं। हजार दफे कहा था— आना होगा तो आ जाएगी, मगर तुझे तो शौक चढ़ा था बेइज्जती करवाने का।' न दुआ न सलाम, शकील जूते पटकता हुआ आगे—आगे निकला तो आपा भी नाक—भौं सिकोड़ती उसके पीछे हो ली। दरवाजे की ओट में खड़ी इफरोज सारी बातें सुन रही थी। बुत बना बैठा नजीर उनके जाते ही बैचेन हो उठा। फिर उसने वही किया जो वो हमेशा ऐसे मौके पर करता था। सारा ठीकरा उसने परवीन की जुबान और परवरिश पर फोड़ दिया।

'क्या जरुरत थी इतना तैश में आने की। वो भी शर्मिंदा थे, आये तो थे इफरोज को लेने। अब बैठकर रखो बेटी को मायके में।' नजीर के गुस्से के पीछे की हताशा परवीन ने भाँप ली थी। जब—जब उससे कुछ करते न बनता वो इसी तरह परवीन के सिर सारे गुनाह मढ़ कर साफ—साफ निकल जाता और बेतहाशा शराब पीकर देर रात ही घर लौटता। आज भी उसने यही किया। पति—पत्नी के बीच इल्जामों व मरहमों का एक बड़ा अजीब रिश्ता क्यों होता होगा! दोनों ताउम्र एक—दूसरे को अपनी जिंदगी की तमाम दुश्वारियों का सबब बताते हैं और ताउम्र उसी पहलू में मरहम भी खोजते हैं। पत्नी हमेशा से पति के लिए ढाल रही है। शकील किसी भी तरह इफरोज को तलाक देने को राजी नहीं था, इसलिए इफरोज ने ही पहल कर दी। फोन पर दोनों रिश्तेदारों के बीच खरी—खोटी, मिन्नत—भरम सब चला। आखिर उनके नकारे नशेड़ी बेटे को इफरोज जैसी लड़की कहाँ मिलने वाली थी। मगर कोई फायदा नहीं हुआ। अम्मी ने हिम्मत दिलाई तो अब इफरोज भी मन बना बैठी थी। इफरोज यूं तो सांवलेपन में बाप पर गई थी, मगर तीखे नैन—नक्श उसे माँ के मिले थे। धीर—गंभीर, कम बोलने वाली इफरोज नाटे, दुबले और गहरे रंग के शकील से हर मायने में बेहतर थी। साल भर तक तो उसने शकील की ज्यादतियों की भनक तक मायके में लगने नहीं दी। मगर जब पानी सर से ऊपर चला गया तो उसे जुबान

ISSN : 2319-2178

खोलनी ही पड़ी। उस दिन जब अंधाधुंध पिटाई के बाद सास ने भी बेटे की हाँ में हाँ मिलाई......! तब शकील के जाते ही चुपचाप मायके चली आयी। बिलखते हुए अम्मी को अपना हाल बताया, जिसे सुनकर परवीन सन्न रह गई। बेटी की देह पर जख्मों का दर्द उसे अंदर तक छलनी कर गया। देह के साथ वजूद के भी जख्मी हो जाने का दर्द भला उससे बेहतर कौन समझ सकता था। इन सबके के लिए खुद को ही जिम्मेदार समझती थी परवीन। उसकी हालात के आगे घुटने टेक देने की तबियत ने उसे आज उसकी अपनी औलाद का अपराधी बना दिया था। जब इफरोज को अम्मी की सबसे ज्यादा जरुरत थी, तब परवीन पति, बिरादरी और दुनिया का खौफ खाकर रह गयी थी। बड़े यकीन से इफरोज ने अपने दिल की बात अम्मी को बताई। उसे लगा था कि कोई नहीं भी तो अम्मी उसके दिल की बात जरूर समझेगी। मगर ताउम्र अपने वजूद को नकारती परवीन एक बार फिर लाचार खड़ी रही। बहुत शरीफ लड़का था वारिश। नेक, सुन्दर और तालीमयाफ्ता। नया–नया प्राइमरी स्कूल में मास्टर लगा। इफरोज ने अपनी ख्वाहिश बताई तो परवीन उस पर ही बरस पड़ी– 'तेरे अब्बू के कान तक बात पहुंची तो तेरे साथ मेरी बोटियाँ भी नोच डालेगा। न...न...गुड़िया, भूल जा उसे। पहले ही तेरा रिश्ता वो आपा के बेटे से तय कर चुके हैं।'

'शकील! नहीं अम्मी, मैं मरती मर जाऊंगी मगर उस आवारा–शराबी शकील से निकाह नहीं करूँगी। आप एक बार वारिश से मिल लें। मुझे यकीन है, आप उसे जरूर पसंद करेंगी।'

'न गुड़िया..... तू जानती है अपने अब्बू को। बात–बात पर तलाक की धमकी देता है। अपने लिए न सही, अपनी अम्मी की खातिर कुछ भी ऐसा वैसा मत करना।'

बिलखकर रोई उस दिन इफरोज। परवीन भी रोई, अपनी लाचारी पर। तीन दिन तक गुमसुम बिना खाये–पिये बैठी रही इफरोज। अम्मी के लिए चुपचाप सब कुछ सह गयी। फिर अब्बू ने शकील के हाथ में उसकी डोर सौंप दी। परवीन पुरानी यादों से बाहर आई तो आँसू आज एक बार फिर उसकी आँखों को धो गए। काश! उसने तब थोड़ी हिम्मत दिखाई होती जब उसकी बेटी ने बड़ी उम्मीद से उसकी तरफ देखा था। उसकी बुजदिली बेटी की तबाही का सबब बन गयी थी। मगर अब किसी की नहीं सुनेगी परवीन। बेटी के आंसुओं ने उसे उसकी ढाल बना दिया। उस ही का दम था जो नजीर के एतराज के बावजूद तलाकशुदा बेटी को आगे पढ़ने का हौसला दे गया। पढ़ाई के साथ ही साल भर की ट्रेनिंग पूरी कर इफरोज ने घर के नीचे ही ब्यूटी–पार्लर की दुकान डाल ली। आस–पास की फूफी, खाला, चची सभी ने बिरादरी का खौफ दिखाकर अपने अधेड़ उम्र बेटे, भाई, भांजों से रिश्ता जोड़ देने को कहा, मगर इफरोज की मर्जी के बगैर परवीन उसके निकाह का अब सोचना भी नहीं चाहती थी। अब तो नजीर से भी दो–टूक कह चुकी थी– 'कल का देता, आज दे दे तलाक! मगर अब बेटी की खुशी के आड़े वो किसी को नहीं आने देगी।' नजीर से भी अब कुछ कहते न बनता और सिर झुकाये चुपचाप काम पर निकल जाता।

जिंदगी में जो कुछ है,
जो भी है,
सहर्ष स्वीकारा है;
इसलिए कि जो कुछ भी मेरा है,
वह तुम्हें प्यारा है।

–मुक्तिबोध

ISSN : 2319-2178

कहानी

सपने को मर जाने दो!

✍ अर्चना ठाकुर

हिंदी साहित्य की अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली युवा कहानीकार अर्चना ठाकुर ने इस कहानी के माध्यम से मानवीय जिजीविषा, परिस्थितियों और आनुवंशिक लक्षणों का मार्मिक और यथार्थ चित्रण किया है।

संपर्क
मार्फत– राजीव वर्मा,
जे–2/16, डब्ल्यू ब्लॉक,
साकेत नगर, कानपुर – 208014

सच में उसकी दिली ख्वाहिश थी कि सपने मर जाएं, हमेशा हमेशा के लिए ताकि फिर वे कभी सिर न उठा सकें। इतने गहरे जमीदोज हो जाएं कि कोई कुदालों से भी खोदे तो उसके अतल तक न पहुँचने पाए। वह सिर पकड़े उकडू बैठी सोच रही थी कि वह जो ढूंढ रही है, उसकी तलाश में उसने सारा घर छान मारा पर वह अभी तक उसे न ढूँढ पाई थी। अब वह खुद से ही खीज उठी। अभी–अभी अपने सबसे छोटे लड़के को पीटकर आई है, पर जेहन का उबाल तब भी ठंडा नहीं पड़ा था। उसका मन बार–बार उफन जाता और दोनों जबड़े आपस में अचकचा जाते। काफी देर से पंजों के बल बैठी उसकी एड़ियां और पिंडलियां दुखने लगी थी। अब फर्श पर पलथी मारकर बैठकर वो अपनी कोठरी को निहारने लगती है और एक–एक चीज को यादों की जमीं के किसी न किसी खांचे के साथ खींच–खींच कर निकालती रही।

ये लोहे का बक्सा... यही लेकर तो इस घर में आई थी वह! पर इतने वर्षों में भी इसे अपनी जगह आज तक नहीं मिली। कभी कोई खटिया के नीचे खिसका देता तो कोई इसे खींचकर बैठका बना लेता। इस बिन ताले के बक्स को कभी भी कोई खोल लेता है। कुछ खास नहीं है उसमें, पर नहीं सुहाता कि कोई इसे खोले और फिर बेतरतीबी से वहीं छोड़ दे। वह लाल गोटे वाली चुन्नी इसी में पड़ी है, छुटकी अक्सर इसमें रखी वो लाल चुन्नी निकालकर घर–घर खेलने लगती, पर मेरे देखने से पहले ही रख देती। कितना गुस्सा करती हूँ और तो क्यों न करूँ! यही बक्स तो बचा है जिसे मायका मान कभी–कभार याद कर सिसक लेती हूँ। यही आयताकार टीन का बक्सा जो मन का खांचा बन गया, जिसकी चहुँ दीवारों में उसका मन कैद सा हो गया है। पर कोई नहीं समझता उसका मन! उसका मरद भी इसी पर बैठता था। अक्सर कहता था– ''न कुर्सी सही इसी पर बैठूँगा।'' वो मरने से पहले इसी पर अक्सर बैठकर खाता–पीता, मर गया......! एक गंदी गाली मौन उसके मस्तिष्क में कौंध गई।

ISSN : 2319-2178

धीरे–धीरे डूबती निशा रजनी का हाथ थामे क्षण भर में ही उसकी कोठरी में पसर जाती है। वह किनारे जमीन पर लुढ़की पड़ी ढिबरी उठा कर जलाती है, पहले जो दारू की बोतल थी। उसने यही आकर तो पहली बार देखी थी दारू की बोतल! इससे पहले न दारू, न दारू की बोतल, कुछ न जानती थी वह। कैसे आंखें फाड़े देख रही थी, जब एक ही घूंट में उसके आदमी ने बोतल आधी कर, वही बोतल पास बैठी अपनी माँ के हाथ में पकड़ा दी। वह जब तक कुछ समझती उसकी माँ एक दो घूंट में बाकी बोतल खत्म कर चुकी थी। फिर ढेर सारी उनकी गालियों ने उसे चूल्हे की ओर ऐसा धकेला कि अभी तक समय पर उसे रोटी देकर ही चूल्हे से हट पाती हूँ वह। तब शुरुआत में उसकी आवाज सुनकर ही वह कितना काँप जाती थी। ऊपर से नीचे तक रूह शरीर की सलाखों के बीच छुप जाती। अभी भी उसकी सास वहां किनारे खटिया पर औंधी पड़ी बीड़ी सुलगा रही थी, बिलकुल उससे बेखबर कि वह क्या ढूंढ रही है। फिर कोई विचार बिजली सा उसके मस्तिष्क में कौंध गया और चहुँओर वो फिर से खोजने लगी। चूल्हा और उसके किनारे तितर–बितर पड़े उपले–कंडे, कुछ सूखी कुछ गीली लकड़ियाँ देख फिर मन उबल पड़ा– खाना भी नहीं बना, कितनी लाते खाई समय पर खाना न बनने पर। तब मन करता था कि रोये... खूब रोये पर आज याद कर मन करता है कि हँसे, खूब हँसे। उन गीली लकड़ियों से कोठरी में धुँआ भर जाने पर वही लकड़ी कब पीठ पर जमा दी जाती। वह काम की धुन में खोई सिर्फ अपनी चीख पर ही जान पाती। पर थी ठेठ जिद्दी! करती हमेशा मन की ही थी। मार ही न डालेगा और क्या करेगा? पर उसी क्रम में वह पांच बच्चों की माँ बन गई। आदमी आदमी रहा, और वह किसी सुअरिया की तरह हो गई। कभी एक को चुप कराती, दूसरे के मुंह में स्तन ठूँसती तो तीसरे के मुंह में सूखा कौर ठुसाती तो किसी को थपकी दे–दे कर सुलाने की चेष्टा करती। वो एक–एक दिन कर कितने ही दिन उसी कोठरी में धुँआ पीते गुजर जाते उसके। एक तरफ चूल्हे की गीली लकड़ियों से उठता धुँआ तो दूसरी ओर सास की बीड़ी से उठता धुआं। खांसते–खांसते मुंह लाल होकर जी हलक से बाहर ही लटक जाता। मन करता अपने हाथों अपना गला ही दबा ले। पर उसी पल पेट में पल रही छठी जान करवट बदलती और वो बस अंतरस बिलख कर रह जाती।

कैसे आँखें फाड़े देख रही थी, जब एक ही घूंट में उसके आदमी ने बोतल आधी कर, वही बोतल पास बैठी अपनी माँ के हाथ में पकड़ा दी। वह जब तक कुछ समझती उसकी माँ एक दो घूंट में बाकी बोतल खत्म कर चुकी थी।

अब तक वह जो ढूंढ रही थी वह नहीं मिला था और इससे उसके जेहन में गुस्से का लावा सा उबल रहा था। एक आखिरी तय जगह और खोजेगी नहीं मिला तो निश्चित रूप से वो खोजना छोड़ देगी। तभी तेज भभका उसके नथुने को चीरता सीधे फेफड़ों में उतर गया। उसकी सास बीड़ी पीती अपनी लाठी थामे कब उसके नजदीक खड़ी हो गई, वो जान भी न पाई– ''अरी डायन क्या खाने को खोज रही है, तब से खट–पट किए जा रही है।'' वह उसे अनदेखा कर अपने नियत खोजने के स्थान की ओर मुड़ गई। अब उसकी सास के कड़वे शब्द उसकी पीठ में धसते जा रहे थे। वो फिर भी नहीं पलटी और अपने काम में लगी रही और सोचती गई कि आज अगर दीदी जी होती तो जरूर कहती– 'बड़ी मेहनती है तू!' वह जहाँ झाड़ू–पोछा करने जाती थी, वहां की मालकिन को वो दीदी जी

कहती थी। उस दिन वह सिंक में खड़ी थी। कब दीदी जी आई, उसे पता ही न चला। बड़ी धुन से बर्तन मांजने में लगी थी। वे कब से अपने कमरे से उसे आवाज दे रही थी, पर वह नहीं सुन पाई। तब वो आवाज लगाती–लगाती उसके नजदीक तक आ गई। वह ऐसी चौंकी मानों नींद से जगी हो। अवाक् मुख से वह दीदी जी की तरफ देखती है। उसके हाव–भाव वहीं जड़वत हो गए थे। नल अभी भी धीरे–धीरे लगातार बह रहा था। दीदी जी, वह बड़े दिल से दीदी उन्हें कहती। अगर इसकी जगह कोई दूसरी मालकिन होती तो इस वक्त दो बात सुनाती, फिर काम की बात करती, पर वो तो मुस्करा रही थीं और उसकी तारीफ कर रही थी कि 'कितनी लगन से काम करती हो कि आस–पास क्या घट रहा है, कुछ सुनती ही नहीं! मान लो, उसी पल धरती पलट जाए तो तेरे तो तब भी एक हाथ में बर्तन तो दूसरे हाथ में मंजना मिलेगा।' और अपने गुलाबी होठों से कस कर खिलखिला दी दीदी। वह अवाक् थम गई और धीरे–धीरे बर्तन मांजने लगी। पर उसकी जिद्द लगन से बेपरवाह हमेशा की तरह उसकी सास उसे गरिया रही थी। पर अब कहाँ परवाह करती है वो उसकी अभी पलट कर एक बार जहाँ वो चिल्लाई नही कि उसकी सास बड़बड़ाती खाट से जा लगेगी।

जब नई–नई शादी होकर आई थी। तभी पहली रात में ही उसकी ससुराल का मुख पूरी तरह से खुल गया था। सास और उसका पति साथ में दारू पी रहे थे। उसकी आंखें फटी की फटी रह गई। वो जिस बस्ती से आई थी वो कामगारों की बस्ती थी। वहां का हर घर काम करने जाता था– कोई माली का, कोई चौकीदार का, कोई बर्तन झाडू, कपड़ा धुलने जाता। बस्ती से कुछ ही दूर बनी कोठियां उन कामगारों की रोटी का आसरा थीं। उसका घर उनमें से एक अच्छी काम वाली का घर माना जाता था। उसका बाप माली था और माँ कोठी में काम करने जाती पर दारू बीड़ी किसी को छू कर भी न गया था। और एक ये घर जहाँ माँ बेटा साथ बैठे दारू पी रहे थे। पति अपना गिलास खत्म कर लुंगी समेटकर उसकी तरफ मुड़ गया। फिर वह रात और जाने कितनी और रातें उसकी जिंदगी कुचली मसली गई और सांवरे भरे बदन से वो किसी सूखी लकड़ी सी नजर आने लगी। पीठ की एक–एक हड्डी गिन ले, गले के आले पर कोई दीया जला ले! पांच जीते, दो मरे बच्चे की माँ बनते–बनते वो एक ढांचा मात्र हो कर रह गई थी!

> ***उसका चेहरा रक्तविहीन पीला पड़ गया। उसकी मुट्ठी में फंसे नोट चींटियों से उसकी हथेली को काटने लगे।***

तब उस घर में खुद को और अपने बच्चों को वो दुःख और उदासी के बीच पालने लगी। ऐसे घर में जहाँ बेटा रिक्शा चलाकर लौटते वक्त एक दारू खुद पीकर दूसरी अपनी माँ के लिए लाना उसका नियम होता। माँ दारू पा कर बेटे को जीने का और रोज दारू पिलाने का आशीष देती। तभी उसने जाना कि जब उसकी सास ब्याह कर आई थी तो उसके बाप ने अपने दामाद को बता दिया कि चाहे नया कपड़ा गहना न दो पर रोज एक बण्डल बीड़ी और एक देशी ठर्रा लाकर जरूर देना। तब से उस नियम को ससुर के बाद उसका बेटा निभा रहा है। बीच में एक बार सहते–सहते वो मुंहजोर हो गई तो अपने बच्चों सहित तब अकेली रहने लगी। इसी कोठरी के पास के कच्चे स्थान पर फूस का छप्पर तान उसने अपना ठिकाना बिलकुल अलग कर लिया। और कुछ दूर बने बड़े घरों में झाडू बर्तन का काम शुरू कर दिया। उसकी जिद्द थी कि अपने बच्चों को पढ़ाएगी। उन्हें ऐसी गलीच जिंदगी नही देगी। बड़े बेटे से उसकी सारी उम्मीदें, सपने जुड़ गए और नियम से वह काम पर जाने लगी। बाकी दो छोटे लड़के सरकारी स्कूल में जाते, जहाँ खाना भी मिल जाता। लेकिन बड़े लड़के को पब्लिक स्कूल में डाल दिया। जाने कैसी उम्मीद

उसके दिलो–दिमाग में चस्पा हो गई कि वो आदमी बन जाएगा तो उसका और बाकी के बच्चों का भविष्य भी बन जाएगा। उसकी सास ने घर पर ही दारू बनाकर बेचने का काम शुरू कर दिया। कुछ दिन तो दोनों ऐंठे रहे। पर लोगों का आना–जाना उनकी उठती गंदी निगाह उसे और बेजार करती गई। अलग होकर भी कुछ न बदला, बल्कि फिर से तंग आकर पर जल्द ही सब कुछ मिल–मिलाकर सम हो गया। बेटा, बेटा ही पूरा निकला, खसम न रह पाया और फिर से गाली, रोटी साथ–साथ पकने लगी।

उसके आदमी ने खाट पकड़ लिया था। अब इस लालसा से कि सास को बीड़ी का खर्च वो देगी, उसने दारू का काम बंद करवाया, लेकिन जहर ने अपना असर दिखाना शुरू कर दिया। इसी बीच उसका आदमी भी गुजर गया। तब भी वह नहीं हारी। अब तो दारू का पैसा भी वह देती और घर का काम कर, अपने काम पर भी जाती। वह अपने बच्चों को ऐसे माहौल से बचाना चाहती थी। जानती थी ये धीमा जहर है, मरे बिना न छोड़ेगा। उसका ससुर भी दारू पीते–पीते अपनी आंत जला बैठा। सास तो जब ठर्रा मारती तब काफी कुछ अतीत उगलती– 'मैं भी तो पीती हूँ देख कैसे भली चंगी बैठी हूँ वो मुआ तेरा बाप हरामी आंच से उतरी ही गर्म–गर्म महुआ पी जाता.... अरे सब्र कर आराम से पी!' फिर जोर का ठहाका मारती। तब उसी पल उसका जी जल उठता। दारू की तीखी जलने की बू से भी तीक्ष्ण! अपने बच्चों को देखती कि कैसे दादी की नकल करते, महुआ पीते–चिढ़ाते हुए भाग जाते। ये देख वो जल भुन जाती। उसने कैसे–कैसे कर अपनी दोनों बेटियों का ब्याह कर दिया और पास की कालोनी में झाड़ू पोंछा का काम जारी रखा। किसी दिन लौटी तो किसी ने कहा कि उसका लड़का कंचा खेल रहा है तो वो तिलमिला उठी। गुस्से में सास की दारू बंद कर दी। फिर तो जैसे घर दहक उठा। आखिर लड़के को मार–पीट कर स्कूल भेजती, फिर काम पर जाती। कक्षा बढ़ी, लड़का दसवीं तक पहुँच गया तो वह चुहुक पड़ी। अब ज्यादा पैसा चाहिए था। लड़का सब हिसाब बताता। पर एक जैसा काम करते–करते अचानक कैसे पैसा बढ़ जाएगा। रोज ही लड़का बताता आज नई ड्रेस चाहिए, कभी कॉपी, कभी फटा बस्ता उसके आगे फेंक देता। वह चुहुक उठती कि कहीं लड़का तैश में आकर पढ़ाई न छोड़ कर बैठ जाए। वह पैसे का इंतजाम करती रही। कभी जोड़ा धन निकालती, कभी कहीं से जुगाड़ लगाती। बचे–कुचे उसके कुछ अदने से जेवर कबके स्वाहा हो गए। बर्तन भी कुछ बचे रह गए। पर सोचती ये फल का पौधा है, आज खूब खून–पसीने से सींच रही है, कल यही फलों से लदा नजर आएगा। पर एक दिन इतने रुपयों की फरमाइश कर दी कि वो घबरा उठी। कल तक न मिला तो स्कूल से नाम कट जाएगा। अब क्या करे? सोचकर बेकल हो उठी। उसने बहुत रास्ते खंगाले पर कोई उपयुक्त रास्ता न मिला।

'मंजरी बोलो कुछ मदद करोगी?' वह जानती थी उसकी हमउम्र मंजरी काम करने के बहाने क्या बेचकर कमा कर लाती थी। अब उसी से कुछ उधार की उम्मीद थी। पर मंजरी हिसाब की पक्की थी– 'कुछ दो तभी लो।'

'पर क्या दूँ! इस देह के सिवा क्या है मेरे पास।' मन ही मन घबरा रही थी वह। उसकी मैली, सांवली दुबली देह देख मुंह बिचकाकर, आखिर में मनुहार पर मान गई। उसने आज वो किया जो उसको दो हिस्सों में बाँट गया। देह और आत्मा पृथक हो छिटककर अलग हो गए। वह मुड़ी–तुड़ी साड़ी बांधे घर आई। डरी हुई कि कहीं अब तक उम्मीद खोकर स्कूल न छोड़ दिया हो। लगभग दौड़ती हुई वह आई। पहले घर में देखा, न मिलने पर उसके स्कूल की ओर चल दी। घबराहट में मन–दिमाग सब सुन्न पड़ जाते हैं। शाम का वक्त था। स्कूल के प्रांगण में जहाँ–तहाँ उसके बारे में पूछती, उसे ढूंढती। ज्यों–ज्यों उसे ढूंढती वह आगे बढ़ती हर कदम एक नई बात, नया किस्सा उसके आगे खुल जाता– 'अरे किसे ढूंढती हो! स्कूल के आगे नहीं पिछवाड़े ढूंढती।'

उसे कोसती, गाली देती आगे बढ़ गई– 'नहीं मानती तो जा खुद देख ले, कौन सा स्कूल! कब का निकाल दिया। तू तो बर्तन भांडे में घुसी रही। कहाँ देख पाती कि कहाँ जाता है तेरा लौंडा!' धक से मन में चिंगारी सी फूटने लगी।

'जा देख सूखे कुएं के पास गंजेड़ियों के संग बैठा होगा।' और सचमुच स्कूल का रास्ता पार

करते वह सच्च नग्नावस्था में उसके सामने आकर खड़ा हो गया। उसे सामने देख उसका नशा काफूर हो उठा। अब उसकी पढ़ने के नाम पर रात—रात भर लैंप पोस्ट के नीचे गुजारने, पढ़ने का ढोंग, कभी किसी दोस्त के संग पढ़ने, कभी मास्टर जी के घर जाने का ढोंग एक आवरणविहीन सत्य की तरह उसके समक्ष प्रकट हो गया। उसका चेहरा रक्तविहीन पीला पड़ गया। उसकी मुट्ठी में फंसे नोट चींटियों से उसकी हथेली को काटने लगे। उनके दंश से मुक्त होती वह खाली हाथ वापस आ गई।

तब से अगले तीन दिन उसने उसे नहीं देखा, पर उसका मौन उसका इंतजार करती रही। शायद वो वापस आए। उसने काम भी छोड़ दिया। अब सास के जमाए दारू का काम शुरू करने की ठानी उसने। तबसे मिट्टी की तह के नीचे दबा महुआ जलावन की भट्टी ढूंढ रही थी। आखिर मिल गई। उसने उसे खोदना शुरू कर दिया। धप्प.. धप्प! आवाज सुन फिर उसकी सास चारपाई से मुड़ कर देखती है। वह देखती है कि पसीने से लत फत उस भट्टी को बड़े करीने से वो झाड़ रही थी। उसकी दोनों भौएं आपस में जुड़ जाती हैं। वह कुछ कहने को थी कि छुटका लगभग दौड़ता हुआ वहां आता है। वह मुड़कर देखती है। छुटका अपनी हफ्नी में आधे खाए शब्दों में खबर देता है। जो सुनकर वह दौड़े—दौड़े खेतों से गुजरती रेल की पटरी तक पहुँचती है। जहाँ लोगों का हुजूम सा लगा था। वह हर चेहरे में अपने बेटे का चेहरा खोजती भीड़ चीरती गई। अब सबके चेहरे उसकी ओर मुड़ गए, पर उसकी निगाह रेल की पटरी की ओर उठ गई। भीड़ उसी को ताक रही थी। उसने देखा पटरी पर किसी की देह के टुकड़े छितरे पड़े थे। वह आंखें फाड़े देखती रही, पर लगातार धुंधली होती उसकी आंखे पहचान गई कि वो उसी के खून के टुकड़े थे!

बात बोलेगी,
हम नहीं!

-शमशेर

लघुकथा

गुलाब

डॉ. पूरन सिंह

कपूर साहब की शहर में सबसे बड़ी कोठी है। सुबह का समय था। मिसेज कपूर अचानक चीखती हुई अपनी कोठी से बाहर आयीं- 'अरे पकड़ो...भागने न पाए चोर-चोर.....।' कोठी के बाहर खड़े दरबान ने भागना शुरू किया था। चोर आगे-आगे और दरबान पीछे-पीछे। और अंत में दरबान ने चोर को पकड़ लिया था और घसीटता हुआ मिसेज कपूर के सामने लाकर खड़ा कर दिया था। अब तक कपूर साहब भी आकर खड़े हो गए थे। चोर कोई आदमी नहीं था। वह तो छह-सात साल की बच्ची थी। सरकारी स्कूल की, लगभग फटी सी, स्कूल की यूनिफार्म में खड़ी वह बच्ची अपनी मुट्ठी बंद किए थी, जिसमें उसने चोरी की हुई चीज छिपा रखी थी।

'अरे इस हरामजादी की मुट्ठी खुलवाओ।' दरबान पर चीखी थी मिसेज कपूर।

'ये लोग हद दर्जे के नीच होते हैं।' कपूर साहब अपनी पत्नी की ओर देखकर बोले थे। बच्ची मुट्ठी खोलने को राजी नहीं थी और दरबान अपनी पूरी ताकत लगा रहा था। अंत में दरबान मुट्ठी खोलने में सफल हो गया। मुट्ठी के खुलते ही गुलाब की पंखुड़ियां बिखर गईं थीं।

'अच्छा, तो तू गुलाब चुराकर भाग रही थी। यह गार्डन तेरे लिए ही बनवाया है....।' गुलाब की बिखरी हुई पंखुड़ियां देखकर मिसेज कपूर संतुष्ट थीं- 'चलो, दो पैसे के गुलाब पर ही बीती... नहीं तो यह चोट्टी कोई बड़ा हाथ मार गई होती तो...।'

'टीचर कहती है- गुलाब प्यार की निशानी होती है टीचर कहती है..टीचर कहती है...गुलाब ऊंच-नीच का भेदभाव खत्म कर देता है...टीचर कहती है..।' फिर बच्ची ने गुलाब की बिखरी हुई पंखुड़ियां इकट्ठी करते हुए कहा- 'आज मेरी टीचर का बर्थ डे है। मैंने उन्हें देने के लिए गुलाब चुराया था...मेरे पापा नहीं हैं...मां किसी... त..र..ह..।' इतना कहकर बच्ची रोने लगी थी और एक हाथ की हथेली बंद किए दूसरे हाथ की हथेली को उससे जोड़े खड़ी बार-बार मांफी मांग रही थी। मिसेज कपूर बच्ची को 'ढोंगी कहीं की' कहती हुई अंदर चली गई थीं। कपूर साहब उनके पीछे-पीछे चले गए थे। दरबान ने बच्ची को गोद में भर लिया था। उसकी पलकें भीग गईं थीं। कुछ देर बाद बच्ची चली गई थी। बाद में, पता चला कि बच्ची को गोद में लेने की सजा के रूप में दरबान की छुट्टी उस कोठी से हमेशा-हमेशा के लिए कर दी गई।

ISSN : 2319-2178

कहानी

आरजू

✍ *कात्यायनी सिंह*

उपन्यास शैली में लिखित इस कहानी के माध्यम से कहानीकार ने सामाजिक विद्रूपताओं के जीवंत चित्रण को प्रस्तुत किया है।

'काश! झमाझम बारिश हो और मैं बारिश में भींग सकूं....!' खिड़की पर बैठी आरजू यही सोचकर मुस्कुरा उठी। उसे बचपन से ही बारिश में भींगना बहुत अच्छा लगता है। हालांकि उसे ये नही पता कि उसका बचपन था कब, और वह कब जवान हुई। आरजू थी भी बहुत मदमस्त। अपूर्व रूप की स्वामिनी। पतली सुराहीदार गर्दन और उसके ऊपर मासूम सा चेहरा, जिसपर दो रसीली, चंचल आँखें। हँसती या मुस्कुराती तो गालों में पड़े गढ्ढे उसकी खूबसूरती को और बढ़ा देते। शरीर की बनावट जैसे कोणार्क की मुर्तियां।

खिड़की के बाहर काली– सुरमई रंगत फैलने लगी। परिंदे अपने अपने घरों में लौटने के लिये बेताब होने लगे। बारिश होगी जरूर, यह सोचकर उसका मन और पैर दोनों मोर की भांति नाचने लगे। उसे अपना छोटा सा बगीचा बहुत पसंद था। लॉन में बिछी मखमली दूब, चारों तरफ लगे गमलों में तरह–तरह के पौधे, और एक–दूसरे के पास खड़े देवदार के पेड़..... जैसे पहरेदार के रूप में खड़े हों।

बारिश की बूंदे धीरे–धीरे धरती को शीतल करने लगी। आरजू खुशी से नाच उठी। नाचते–नाचते जब थक गई तो वहीं मखमली घास पर सीधे बैठकर चेहरा आसमान की ओर कर बारिश की बूंदों को चेहरे पर बरसाने लगी। अचानक बिजली कौंधी। उसे लगा पीछे से कोई उसे देख रहा है। जैसे ही पीछे मुड़कर उसने देखा एक सरल, निष्पाप, भोला सा एक नौजवान उसे अपलक निहार रहा है। वह भी कौतुहल से उसे देखने लगी। पर यह दृष्टि क्षणिक थी। झट वहां से दौड़कर कमला बाई की आगोश में समा गई।

'क्या हुआ लाडो ? ऐसे घबड़ाई हुई क्यूं हो?'

'अम्मा! कोई बाहर खड़ा है।'

'अरे ! तूने पूछा नहीं कि कौन है।'

उसकी तेज चलती साँस पता नहीं क्यूं, थम नही रही थी। इसके पहले कितने मर्दों के सामने नाची हूँ, पर किसी के लिये मन में इतनी बेचैनी नही हुई। आखिर यह कौन है जो मुझे इतना बेचैन कर रहा है। क्यूं मुझे ऐसा लग रहा है कि इससे पहले भी कभी मिल चुकी हूँ। मन में इतनी हलचल क्यूं है? अम्मा की तेज हँसी से आरजू की तंद्रा भंग हुई। अम्मा उसी नौजवान से हँसकर बातें कर रही थी। अम्मा ने बताया कि अमन उसका भतीजा है। वह भावमग्न सी चुप अमन को देखती रही। अमन भी आरजू को देखता रहा। अप्रतिम सौन्दर्य की चमक से चौंधियाया पलक तक न झपका सका। सौन्दर्य की जीती जागती तस्वीर।

संपर्क
गीताघाट कॉलोनी,
(पेट्रोल पंप के नजदीक)
सासाराम, रोहतास
बिहार – 821115

ISSN : 2319-2178

'हाय अमन!' –आरजू मुस्कुराते हुये बोली।

'हैलो।' –अमन बोला

'तुम दोनों बातें करो। मैं चाय–नाश्ते का प्रबन्ध करके आती हूं।' शान्ताबाई चली गई।

'क्या करते हैं आप ? और यहां कैसे आना हुआ ? इसके पहले तो आपको यहां देखा नही?'

आरजू के सवालों को सुनकर अमन जोरो से हँस पड़ा– 'इतने प्रश्न एक साथ। मैं यहां नौकरी के सिलसिले में आया हूँ। कल इंटरव्यू है मेरा।'

'आप क्या करती हैं ? मॉडलिंग या फिल्में। इतनी सुंदरता तो सिर्फ वहीं देखने को मिलती है।' –अमन शरारत से देखते हुये बोला।

आरजू की मुस्कुराहट अचानक गायब हो गई– 'मैं कैबरे डांसर हूँ। अनाथ! अम्मा के यहां पनाह लेकर पड़ी हूँ।'

आरजू की बड़ी–बड़ी आँखों में आँसू देखकर अमन को बेचैनी होने लगी। किशोरी बाई के आते ही दोनों सामान्य हो गये।

उमस भरी शाम। अमन नहाकर ताजगी महसूस कर रहा था। पहली बार आरजू का दिल इतना बेचैन हो रहा था। अभी तक की कच्ची ख्वाहिशें, जिन्हें बचाकर रखा था, वो प्यास का दरिया बनकर रेशा–रेशा आँखों से बहने लगीं। एक साथी जिसके साथ की कामना वर्षों से कर रही थी, अमन में वह दिखाई दे रहा था। एक जज्बाती रिश्ता, प्रेम का रिश्ता।

सुबह आरजू की सूजी हुई आँखें देख अमन भी बेचैन हो गया– 'आप ठीक हैं न!'

मुस्कुराकर आरजू ने कहा– 'ठीक हूँ। बहुत दिनों से आँखों में एक सपना तैर रहा था, जो बहते–बहते आँखों को लाल कर गया।'

'वाह, आप तो शायरी करने लगीं।'

'मेरा पेशा ही ऐसा है, जहां कदम–कदम पर शायरों से वास्ता पड़ता है।'

अचानक आरजू की आँखें अमन से मिलीं और उन आँखों में अपने आप को देख आरजू अपने को सम्भाल नही पाई। उसके गले लग फूट–फूटकर रो पड़ी। रात भर की बेचैनी आँसूओं के रूप में बहने लगी। दोनों की आँखों से बहते आँसू दोनों के प्रेम के साक्षी बन गये।

'तुम पहले क्यूं नही मिली!'

'क्या होता? पहले मिलती तो।'

'नाक साफ करना सिखा देता।'

'अच्छा!' अमन की शर्ट में अपनी नाक को पोछते हुये आरजू अदा से मुस्कुराई।

'ओहो, गन्दा कर दिया मेरी शर्ट! इसे अब तुम पहनना।'

'मैं धो दूंगी।' –आरजू बनावटी गुस्से से देखते हुए बोली।

उसकी नाक को चुमते हुए अमन बोला– 'तुम्हारी नाक का बहता पानी भी मेरे लिये स्वच्छ है।'

आरजू हँसते हुए उसके होठों को चूम लेती है। दोनों के शरीरों में अजीब सी लहर उठती है और जिन्दगी खूबसूरत लगने लगती है।

'ओ लाडो कहां हो? चाय नही बनाओगी.... जानती हो तुम्हारे हाथ की बनी चाय जब तक पी न लूं, संतुष्टि ही नही होती है।'

'अभी बनाती हूँ अम्मा।'

अमन शान्ता बाई के पास आकर बैठ जाता है।

'बुआ, आरजू तुम्हें कहां मिली?'

'बहुत लम्बी कहानी है अमन। आरजू पन्द्रह साल की थी जब उसके माँ–बाप सड़क दुर्घटना में चल बसे। अकेली आरजू को सहारा दिया उसके चाचा–चाची ने। साल भर खूब प्यार से रखा इसे। फिर धीरे–धीरे अपने असली रंग में आने लगे। पढ़ाई छूट गई, घर के कामों की वजह से। एक दोपहर चाची किसी काम से बाहर गई थी। घर में अकेली आरजू और उसके चाचा। सिरदर्द के बहाने से आरजू को अपने पास बुलाकर जोर जबरदस्ती करने लगा। किसी तरह अपने को बचा आरजू वहां

ISSN : 2319-2178

चौथे के बीतने के दूसरे दिन अर्पित आरजू को सांत्वना दे रहा था और वो काठ बनी मूक छत को निहार रही थी। तभी उसे महसूस हुआ कि कोई कीड़ा उसके शरीर पर रेंग रहा है। अर्पित का हाथ अपने जिस्म पर देख अचानक वह उठी और शेरनी सी गरज उठी?

से भाग निकली। रात में पनाह ली अपनी एक सहेली के घर। सहेली के माता–पिता बहुत अच्छे इंसान थे। उन्होंने आरजू को मुम्बई अपनी बेटी के पास भेज दिया। पेइंग गेस्ट के रूप में मेरे घर रहती है। नौकरी करने की चाह अधूरी रही, क्योंकि दसवीं पास को कौन नौकरी देगा। उसकी सहेली ने उसे कैबरे डांसर बनने की सलाह दी। बहुत प्यारी बच्ची है।' आँखों में ममता की डोर दिखाई देने लगी शान्ता बाई की आँखों में।

'बुआ, मैं आरजू से शादी करना चाहता हूँ। मेरे घरवालों को मनाने की जिम्मेदारी आपकी है।'

'अमन, जल्दबाजी में कोई फैसला मत लो। सोच समझकर निर्णय लो। आरजू मेरी बेटी जैसी है। मैं नही चाहती की उसे बाद में कोई तकलीफ हो।'

'बुआ, मैं कोई निर्णय जल्दबाजी में नही लेता। मुझे आरजू से प्यार हो गया है।'

बुआ की दृष्टि स्नेहिल हो गई।

अजीब सी कशमकश में दो दिन बीते। अमन और शान्ताबाई के मन में एक डर समाया था। पता नहीं अमन के माँ–पिता इस रिश्ते को स्वीकारेंगे या नही। संयोग ऐसा कि अमन के माँ–पिता ने इस रिश्ते को स्वीकृति दे दी। धूमधाम से दोनों की शादी हो गई।

'कैसा संयोग है न आरजू, हमें कुछ करना भी न पड़ा और हमारी शादी हो गई।' –अमन भावविह्वल होकर आरजू के कन्धों पर अपना हाथ रख देता है। आरजू की धड़कन बढ़ गई। दोनों मौन हो कुछ देर एक–दूसरे को देखते रहे। मन में जो कुछ भी था, आँखें बयां कर रही थी। शब्दों का मोहताज नही था यह पल...यह लम्हा। कमरे में मधुर संगीत गुंज उठा.... लय–ताल के साथ। समय अपनी गति से बढ़ता रहा और आरजू–अमन का प्यार भी।

'अमन, आज तुम ऑफिस मत जाओ। मेरा मन आज बहुत बेचैन है।' –आरजू जिद करते हुए कहती है।

'आज जाना बहुत जरूरी है आरजू।' –अमन आरजू को प्यार से कुछ देर देखता है, और फिर उसके होठों को चूमकर घर से निकल जाता है। आरजू उदास बैठी थी। हाथ में दर्पण लिये खुद को निहार रही थी। फोन की घण्टी बजी तो पता नही क्यूं उसका दिल जोर जोर से धड़कने लगा।

'आपके पति का एक्सिडेन्ट हो गया है।'

इतना सुनते ही आरजू के हाथ से दर्पण गिरकर टुकड़े टुकड़े में बंट गया। दर्पण दरारों से भर गया। अमन बच गया, पर अपाहिज बनकर।

जुलाई का महीना। लगातार बारिश और पैसे की तंगी से परेशान आरजू को समझ नहीं आ रहा था कि वो क्या करे। भविष्य कैसे समझ आये, जब वर्तमान ही अंधकार हो गया हो। दिल और दिमाग की कशमकश चलती रही। दिल कहे– नहीं,

पुरानी राह नहीं चलना है; पर दिमाग कहे वही एक रास्ता है, जिस पर चलकर तुम अपना भविष्य सुनिश्चित कर सकती हो। अंततः दिमाग की जीत हुई। निकल पड़ी वहां, जहां पहले वो कॉलगर्ल के रूप में काम करती थी।

दो बरस बीत गये। अमन बिस्तर पर पड़े मूक निहारा करता। कभी शक से तो कभी विश्वास की निगाह से। पैसे की तंगहाली ने अब आरजू को वेश्यावृति करने को भी मजबूर कर दिया। शायद जरूरत ने स्वाभिमान को स्खलित कर दिया।

अर्पित प्रतिदिन आने वाला ग्राहक। जो आरजू के लिये सब कुछ करने के लिये तैयार रहता। उसके घर भी बेरोक–टोक आने लगा। पैसा जिसकी जरूरत..... आरजू को हर पल रहती थी, पानी की तरह बहाता था। अपने में ही घुटता अमन चुपचाप सबकुछ देखा करता। कुछ न कह पाने की कशमकश उसके चेहरे पर साफ झलकती। अन्दर से टूट चुो अमन अपनी इहलीला को समाप्त करने के लिए तरसता। धीरे–धीरे वक्त बीतो जा रहा था। वैसे भी वक्त क्या कभी किसी के लिये रुकता है। आरजू जब भी पीछे मुड़कर देखती तो लगता उसकी जिन्दगी भी एक लम्बी कहानी बनती जा रही है।दिन–ब–दिन अमन की हालत खराब होती जा रही थी। जीवन–मरण के बीच प्रतिक्षण संघर्ष करते हुये एक दिन अमन का शरीर निष्प्राण हो गया। आरजू के मूक आर्तनाद से पूरा घर दहल गया। चौथे के बीतने के दूसरे दिन अर्पित आरजू को सांत्वना दे रहा था और वो काठ बनी मूक छत को निहार रही थी। तभी उसे महसूस हुआ कि कोई कीड़ा उसके शरीर पर रेंग रहा है। अर्पित का हाथ अपने जिस्म पर देख अचानक वह उठी और शेरनी सी गरज उठी– 'अब नहीं, बिलकुल नहीं। जिसके लिये मैं अपने स्वाभिमान की तिलांजलि देकर इस रास्ते पर चली थी, जब वह ही नहीं रहा तो फिर किसके लिये... यह सब। तुमसे नम्र निवेदन है कि तुम चले जाओ यहां से। मुझे मेरा रास्ता स्वयं देखना है और तय भी करना है।' अर्पित आरजू के इस नये रूप को देखकर अचंभित हो चुपचाप वहां से चला गया। अंधेरे कमरे में खिड़की के बंद कपाटों के छिद्र से थोड़ी सी रोशनी आरजू के कमरे में दाखिल हुई।

<u>फार्म – 4</u>

समाचार पत्र पंजीयन केन्द्रीय कानून 1956 के आठवें नियम के अन्तर्गत **'मधुराक्षर' त्रैमासिक पत्रिका** से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का आवश्यक विवरण–

1. प्रकाशन का स्थान :
   जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) 212601

2. प्रकाशन की आवर्तिता :
   त्रैमासिक

3. प्रकाशक/मुद्रक का नाम :
   बृजेन्द्र अग्निहोत्री

4. राष्ट्रीयता :
   भारतीय

5. सम्पादक का नाम :
   बृजेन्द्र अग्निहोत्री
   राष्ट्रीयता :
   भारतीय
   पूरा पता :
   जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) 212601

6. कुल पूंजी का 1 प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता :
   स्वत्वाधिकारी
   बृजेन्द्र अग्निहोत्री

मैं **बृजेन्द्र अग्निहोत्री** घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं।

–बृजेन्द्र अग्निहोत्री

कहानी

प्रश्न!

✍ मनीषा गुप्ता

डा. आराध्या आज ही पोस्टिंग होकर रामपुर के सरकारी हॉस्पिटल में आती हैं। चारों तरफ देखने के बाद आराध्या को काफी कुछ बदला बदला सा लगता हैं पर एक चीज आज भी वहाँ यथावत मौजूद होती है। और वो है हॉस्पिटल के गेट पर खड़ा एक बरगद का विशालकाय पेड़, जो बूढ़ा हो चला है, पर आज भी वही गुरूर है उसमें। वो लोगों को आज भी उसी तरह अपनी शरण में ले रहा है। आज आराध्या के चेहरे पर एक सुकून है, वापस लौटने का। जल्दी–जल्दी अपनी औपचारिकता निबटा आराध्या घर पहुँचती है। वो घर जो कई सालों से बंद पड़ा था, जहाँ वो अपना अतीत छोड़कर कुछ बनने की चाह में अपने माता–पिता व बहन के साथ लखनऊ चली गई थी। अपनी डाक्टरी की पढ़ाई पूरी कर उसने वहीं दो साल मरीजों की सेवा की, पर अपने शहर आने की उसकी ललक उसे चैन ही न लेने देती थी, पर आज वो वापस आकर बहुत खुश है। अगले दिन जल्द से जल्द उसकी हॉस्पिटल पहुंचने की छटपटाहट, उसके मन में एक चाह शायद कोई जाने पहचाने चेहरे मिले तो वो उनको दिखा सके कि उसने अपना मुकाम बनाकर खुद को साबित कर दिया। आज वो समाज का जाना पहचाना नाम है।

मरीजों को देखते देखते अचानक एक आवाज– 'डा. आराध्या'। वह नजरें उठाकर देखती है। सामने सुन्दर सा सिर पर पल्लू ढके हुए एक चेहरा, कुछ जाना पहचाना! तभी वह चेहरा आराध्या को देख मुस्कराता है और कहता है– 'अरु! पहचाना मुझे, मैं दिव्या।'

वह चौंक जाती है। दिव्या! वही दिव्या न, जो कभी मुझसे सीधे मुंह बात भी न करती थी। एकदम मुँहफट लड़की और आज..........!

'अरे हाँ दिव्या, कैसी हो? कहाँ हो? शादी कब की? पति क्या करते हैं? और कैसे आना हुआ?' न जाने कितने ही प्रश्न एक साथ पूछ बैठी। दिव्या कुछ परेशान सी दिखती है। आराध्या उसको बैठने के लिए बोलकर खुद भी बैठती है। दिव्या बताती है– 'मेरी शादी यहीं इसी शहर में हुई है। मेरी शादी को कोई चार साल हुए.... पर अरु, मैं माँ नहीं बन पा रही हूँ। जिसकी वजह से मेरे सास–ससुर मेरे पति की दूसरी शादी करना चाह रहे हैं।'

संपर्क
771 ए, आवास विकास कालोनी,
वीरभद्र मार्ग, ऋषिकेश– 249201

'और तुम्हारे पति!' –अरु ने बीच में ही रोककर पूछा।

'अरु, वह उनके आगे कुछ नहीं बोल पाते।'

अरु एकदम मानो घुटे हुए शब्दों में बोलती है– 'यही तो विडंबना है हमारे समाज की.... कि एक लड़की जो एक इंसान के लिए अपना सर्वस्व त्यागती है....ये तन–मन, रिश्ते–नाते.... वही उसका अपना नहीं होता।'

अरु दिव्या का चेकअप करती है और उसको कल फिर पति के साथ आने के लिए बोलती है। वह पूरी रात इसी उधेड़ बुन में लगी रहती है कि आखिर जो गुनाह दिव्या ने किया नहीं, उसकी सजा उसको क्यों?

सुबह दिव्या और उसके पति हॉस्पिटल पहुंचते हैं। दिव्या के पति को देख अरु एक बार फिर चौंकती है– 'अरे संयम तुम!' और संयम सकपका जाता है।

दिव्या दोनों को एकटक देखती है। तभी अरु कुछ संयमित होकर दोनों को बैठने के लिए बोलती है। वह दिव्या की सारी रिपोर्ट संयम को दिखाती है और बोलती है– 'दिव्या माँ बनने के लिए एकदम सही है। अब तुमको अपने कुछ टेस्ट करवाने होंगे।' सुनकर संयम कुछ बौखला सा जाता है और घूरकर अरु को देखता है। दिव्या के चहरे पर एक सुकून सा उतर आता है। फिर दोनों वहां से चले जाते हैं।

अरु आँख बंद कर अपने अतीत को सोचती है। जब इसी संयम से अरु का रिश्ता तय हुआ होता है और ठीक बारात वाले दिन संयम के पिता गाड़ी की फरमाइश रख देते हैं और उसके बिना फेरे न होने की धमकी देते हैं। अरु के पिता की मिन्नत पर वो अपने बेटे पर खर्च होने वाला चिट्ठा गिनवाते हैं और बेइंतहा कोहराम मचाते हैं। तब अरु आगे बढ़कर बोलती है कि 'मेरे पिता आप की हर बात मानेंगे, पर आप को भी हमारी एक शर्त माननी पड़ेगी। मेरे माता–पिता ने भी मुझे पढ़ाने लिखाने मेरी परवरिश में बहुत पैसा लगाया है। हम उसके बदले आप से कुछ नहीं मांगते, पर मैं उनका कर्ज चुकाने के लिए जीवनपर्यंत अपने माता–पिता का खर्च उठाऊंगी। अगर आप को मंजूर हो तो बोलिए ...!' संयम के पिता के अनुसार वो इस बेतुकी शर्त को मानने से इंकार करते हैं तो अरु बारात वापस ले जाने को कह शादी से इंकार कर देती है। वह उसको खूब भला–बुरा बोलते हैं ,पर अरु जैसे अपने फैसले पर अडिग हो जाती है। वह अपने माता–पिता को अपनी आगे की पढ़ाई के लिए कहती है और सब लखनऊ आ जाते हैं। अरु कभी शादी न करने का फैसला कर दो अनाथ लड़कियों को गोद ले उनकी माँ बन जाती है। अपने माँ–बाप की सेवा, उन प्यारी सी बच्चियों का पालन और अपने डाक्टर के पेशे से इंसाफ यही मकसद बन जाता है अरु के जीवन का।

आज अरु अपने फैसले से खुश है। उसके चेहरे पर एक विजयी मुस्कान है। उसके पास पूरा एक परिवार है। ममत्व है। समाज के लिए कुछ करने का सुकून है। अपनी सभी जिम्मेदारी पूरा करने का एहसास है और उसका स्वाभिमान आज उसका है। पर संयम तुम्हारे पास क्या है।

हम तो सारा का सारा लेंगे जीवन,
'कम से कम' वाली बात न हमसे कहिए!

–रघुवीर सहाय

ISSN : 2319-2178

कहानी

भविष्य–निधि

डॉ. पूरन सिंह

सारूसत साहव भारत सरकार से डिप्टी सेक्रेटरी के पद से सेवानिवृत्त हुए हैं। स्वभाव से मिलनसार और काम में अव्वल सारूसत साहव जिस दिन सेवानिवृत्त हुए उनके दोनों बेटे उन्हें आफिस से ले जाने के लिए गाड़ियों का काफिला लेकर आए थे। फूल मालाओं और बैंड की ध्वनि के साथ भांगड़ा करते उनके मित्र और सगे सम्बन्धी इतने खुश थे, जितने शायद उनके बेटों की सादियों में भी नहीं रहे होंगे ।

सारूसत साहव सेवानिवृत्ति के पश्चात परसों आफिस आए थे। शायद कुछ दो–एक चेक बाकी थे। याद आया– उनकी भविष्य निधि का चेक मिलना शेष रह गया था। सीधे वह मेरे पास ही आए थे। सदैव खिलखिलाकर हँसने वाले सारूसत साहव का चेहरा सूजा हुआ था और आँखें भरी–भरी सी थीं।

'कैसे हैं सर!' मैं उनके अधीन सेक्सन आफिसर रहा हूँ। उन्होंने मुझे सदैव अपनत्व दिया है। कुछ नहीं बोले थे सारूसत साहव। शायद आँखें कुछ कहना चाह रही थीं।

'आज कैसे आना हुआ सर! घर में सब ठीक तो है।' फिर नहीं बोले थे सारूसत साहव, लेकिन होंठ फड़फड़ाए थे। उन्हें देखकर लग रहा था, मानो रोना चाह रहे हों।

'सर हम जानते हैं। इतने दिनों तक हमने आपके साथ काम किया है, अब हम बिछड़ गए। बुरा तो लगता ही है। सही बताएं सर ....सेवा से क्यों एक दिन इस जीवन से ही निवृत्त होना हैं हम सब को।' न जाने मैं क्यों दार्शनिक बना जा रहा था कि मेरे कानों में किसी के सिसकने की आवाज सुनाई दी थी और वह आवाज धीरे –धीरे तेज होने लगी थी।

'सर नहीं ..... नहीं सर ....प्लीज नो .....नो ....नॉट।' मैं बार–बार यही कहे जा रहा था, और सारूसत साहव को अपनी दोनों बाहों में भरकर चुप कराने लगा था। सारूसत साहव चुप नहीं हुए थे। लगा था, मानों बहुमंजिला इमारत हरहराकर ढह जाना चाह रही हो। मानों तूफान किनारे तोड़कर सारे शहर को निगल लेना चाह रहा हो। मानो सूरज की अग्नि से पृथ्वी पिघलकर लावा बन जाना चाह रही हो।

संपर्क
240, बाबा फरीदपुरी,
वेस्ट पटेल नगर,
नई दिल्ली–110008

ISSN : 2319-2178

'सर..........स........र......।' मैं सिर्फ इतना ही कह पाया था ।

'सोमवार वाले दिन........' कुछ शब्द इधर–उधर बिखर गए हों।

'हां सर ...यस सर सोमवार वाले दिन क्या हुआ था सर ... ।' अब मैंने उन्हें अपनी बाहों के घेरे से हटाते हुए सोफे पर बैठा दिया था और उनके चेहरे को गहराई से देखने लगा था, जिस पर उंगलियों के निशान स्पष्ट दिखाई दे रहे थे।

''सोमवार वाले दिन मेरा बड़ा बेटा मुझसे मेरे जी पी एफ, बीमा, फंड, ग्रेच्युटी का हिसाब मांगने लगा था।........श्याम बाबू..... अभी वह हिसाब मांग ही रहा था कि छोटा वाला भी आ गया था....।' उन्होंने बताना शुरू किया ही था कि मैं बीच में ही टपक गया था– 'आपका बड़ा बेटा तो शायद इंजीनियर है और छोटा वाला .....।'

'हाँ, छोटा वाला चार्टड अकाउंटेट... यही न! लेकिन दोनों हिसाब मांगे जा रहे थे। बड़े वाले से मैंने पूछा था कि तुम्हें पैसे की क्या जरूरत है तो कहने लगा– मेरी कार पुरानी हो गई है, मुझे नई हांडा सिटी लेनी है। मैंने कहा कि मेरा पैसा कार–वार के लिए नहीं है। मैं अकेला हूँ, जिंदगी का कोई भरोसा नहीं। तुम्हारी माँ की तरह कल चला जाऊंगा या न जाने कब तक जीना पड़े। चार पैसे होंगे तो दो जून की रोटी तो मिलती रहेगी।' वे बोले थे।

'बिल्कुल ठीक कहा आपने.....! .अपने जीवन भर की कमाई ....इन्हें क्यों दे दें।' मैं उनकी हां में हां मिलाए जा रहा था।

'नहीं श्याम बाबू मैंने ठीक नहीं कहा.....। मेरा बेटा इतना सुनकर आग बबूला हो गया था– दो जून की रोटी का क्या मतलब.... हम हैं न...! सुबह शाम का खाना तो मेरे घर अहमद, मेरे बेटे का नौकर भी खाता है, आप भी खा लिया करना। चलो छोड़ो, भविष्यनिधि का पैसा तो दे सकते हो। मैंने मना कर दिया था। बस फिर क्या था उसने मुझे ....मा...र....।' और इतना कहकर बूढ़ी आँखें फिर भर आईं थीं, लेकिन आंसू शायद सूख गए थे। उन्होंने अपने चेहरे की ओर हाथ करके बताया था– 'यहां ... इस जगह उसने मुझे बहुत .मा..रा।'

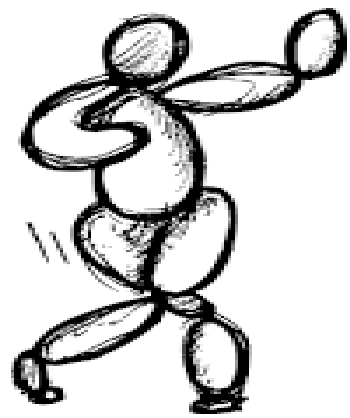

'आपके छोटे बेटे ने आपकी हेल्प नहीं की।'' मैं रेत में पानी तलाशने की कोशिश करने लगा था।

'की......उसने हेल्प की। उसने अपने बड़े भाई को डांटा और मुझे उससे छुड़ाया। फिर अकेले में ले जाकर कहने लगा था ....डैडी .....आप ... आप मेरे पास रहना ...मैं दूंगा आपको खाना ...कपड़ा .... अभी क्या है ......डैडी ...वह मेरा नोएडा वाला फ्लैट है ना ......डैडी सुनो ना.....उसकी सेकिण्ड किश्त के लिए चौदह लाख की जरूरत है। आप अपनी भविष्य निधि से दे दें ...... मैं आपका बेटा ही तो हूँ । बड़े भइया की तरह मैं आपको मार थोड़े ही रहा हूँ।' बोलते चले जा रहे थे सारूसत साहव और मैं उन्हें सुनता चला जा रहा था। मुझे मेरा बेटा याद आ गया था जो सातवीं में पढ़ रहा है। जिसे खिलाते–खिलाते एक दिन मैं कहने लगा था– मेरा बेटा तो मेरी भविष्य निधि है। अचानक मैं चीख पड़ा था–'नहीं ,तुम मेरी भविष्य निधि नहीं हो।'

सारूसत साहव कुछ नहीं समझ पाए थे। वे तो सिर्फ इतना ही बोले थे– 'श्याम बाबू मेरे साथ एडमिनिस्टेशन ब्रांच तक चलो .....छोटे वाले के फ्लैट की सेकिण्ड किश्त न रुक जाय।'

अहंकार–तुष्टि के नशे में,
सब अर्थ बदल जाते हैं
दुनिया बदल जाती है
सियार शेर बनते हैं
श्मशानों के पीपल के पीत–पत्र
और–––और
वाग्वीर बनते हैं।

–मुक्तिबोध

लघुकथा

बाज़ी

सविता मिश्रा

'वाह भई, कलम के सिपाही भी मौजूद हैं।' पीडब्ल्यूडी के चीफ इंजीनियर साहब ने पत्रकार पर चुटकी ली।

'काहे के सिपाही। कलम तो आप सब के हाथ में हैं, जैसे चाहे घुमाये।' पत्रकार सबकी तरफ देखता हुआ बोला।

'पर पत्रकार भाई, आजकल तो जलवा आपकी ही कलम का है। आपकी कलम चलते ही, सब घूम जाते हैं। फिर तो उन्हें ऊँच-नीच कुछ नहीं समझ आता है। आपकी कलम का तोड़ खोजने के लिए जो बन पड़ता हैं, हम सब वो कर गुजरते हैं।' डाक्टर साहब व्यंग करते हुए बोल उठे।

'सही कह रहे हो आप सब। वैसे हम सब एक ही तालाब के मगरमच्छ हैं। एक-दूजे का ख्याल रखें तो अच्छा होगा। वरना लोग लाठी-डंडे लेकर खोपड़ी फोड़ने पर आमदा हो जाते हैं।' लेखपाल ने बात आगे बढ़ाई।

'पर ये ताकतवर कलम, हम तक नहीं पहुँच पाती है।' ठहाका मारते हुए बैंक मैनेजर बोला।

'क्यों? आप कोई दूध के धुले तो हैं नहीं।' गाँव का प्रधान बोला।

'अरे कौन मूर्ख कहता है हम दूध के धुले हैं। पर काम ऐसा है जल्दी किसी को समझ नहीं आता है हमारा खेल।' फिर जोर का ठहाका ऐसे भरा जैसे इसका दंभ था उन्हें। सारी नालियाँ जैसे बड़े परनाले से मिलती हैं, वैसे ही विधायक महोदय के आते ही, सब उनसे मिलने उनके नजदीक जा पहुँचे।

'नेता जी मेरे कालेज को मान्यता दिलवा दीजिये, बड़ी मेहरबानी होगी आपकी।' कालेज संचालक विनती करते हुए बोला ।

'बिल्कुल, कल आ जाइये हमारे आवास पर। मिल बैठकर बात करतें हैं।' विधायक जी बोले।

'क्यों ठेकेदार साहब, आप काहे छुप रहे हैं। अरे मियाँ, यह कैसा पुल बनवाया, चार दिन भी न टिक सका। इतनी कम कीमत में तो मैंने तुम्हारा टेंडर पास करवा दिया था, फिर भी तुमने तो कुछ ज्यादा ही ...।'

'नेता जी आगे से ख्याल रखूँगा। गलती हो गयी, माफ करियेगा।' हाथ जोड़ते हुए ठेकेदार बोला।

विधायक जी ठेकेदार को छोड़, दूसरी तरफ मुखातिब हुए- 'अरे एसएसपी साहब आप भी थोड़ा...... सुन रहें हैं सरेआम खेल खेल रहें हैं। आप हमारा ध्यान रखेंगे, तो ही तो हम आपका रख पाएंगे।' विधायक साहब कान के पास बोले।

'जी सर, पर इस दंगे की तलवार से, मेरा सिर कटने से बचा लीजिए। दामन पर दाग नहीं लगाना चाहता। आगे से मैं आपका पूरा ख्याल रखूँगा।' साथ में डीएम साहब भी हाथ जोड़ खड़े थे। सुनकर नेता जी मुस्करा उठे। सारे लोगों से मिलने के पश्चात उनके चेहरे की चमक बढ़ गई थी। दो साल पहले तक, जो अपनी छठी कक्षा में फेल होने का अफसोस करता था। आज अपने आगे-पीछे बड़े-बड़े पदासीन को हाथ बाँधे घूमते देख, गर्व से फूला नहीं समा रहा था। तभी सभा कक्ष के दरवाजे पर खड़ा हुआ एक नौजवान सबसे मुखातिब हुआ। उसने विनम्रता से कहा- 'और मैं एक किसान परिवार का बेटा हूँ। जिसकी पढ़ाई करवाते-करवाते पिता कर्जे से दबकर आत्महत्या कर बैठे। परिवार का पेट भरने के लिए मुझे चपरासी की नौकरी करनी पड़ रही है। पर मुझे आज समझ आया कि मेरे पिता की आत्महत्या और मेरे परिवार को इस स्थिति में लाने में आप सबका हाथ है। आपका कच्चा चिठ्ठा अब मेरे पास है।'' बाजी पलट चुकी थी! विधायक से लेकर ठेकेदार तक, सब एक-दूसरे का मुँह ताक रहे थे।

संपर्क : देवेन्द्र नाथ मिश्रा (पुलिस निरीक्षक), फ्लैट नं.–302, हिल हॉउस, खंदारी अपार्टमेंट, खंदारी, आगरा–282002

कहानी

धर्म-संकट

कलम को नमन

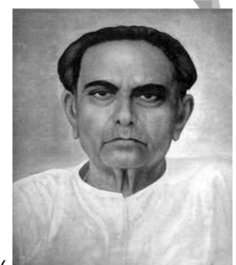

अमृतलाल नागर

जन्म : 17 अगस्त 1916, गोकुलपुरा, आगरा, उत्तर प्रदेश

उपन्यास : महाकाल (1947) (1970 से 'भूख' शीर्षक प्रकाशित), बूँद और समुद्र (1956), शतरंज के मोहरे (1959), सुहाग के नुपूर (1960), अमृत और विष (1966), सात घूँघट वाला मुखड़ा (1968), एकदा नैमिषारण्ये (1972), मानस का हंस (1973), नाच्यौ बहुत गोपाल (1978), खंजन नयन (198 बिखरे तिनके (1982), अग्निगर्भा (1983), करवट (1985), पीढ़ियाँ (1990)

कहानी संग्रह : वाटिका (1935), अवशेष (1937), तुलाराम शास्त्री (1941), आदमी, नही! नही! (1947), पाँचवा दस्ता (1948), एक दिल हजार दास्ताँ (1955), एटम बम (1956), पीपल की परी (1963), कालदंड की चोरी (1963), मेरी प्रिय कहानियाँ (1970), पाँचवा दस्ता और सात कहानियाँ (1970), भारत पुत्र नौरंगीलाल (1972), सिकंदर हार गया (1982), एक दिल हजार अफसाने (1986 – लगभग सभी कहानियों का संकलन)

नाटक : युगावतार (1956, बात की बात (1974), चंदन वन (1974), चक्करदार सीढ़ियाँ और अँधेरा (1977), उतार चढ़ाव (1977), नुक्कड़ पर (1981), चढ़त न दूजो रंग (1982)

व्यंग्य : नवाबी मसनद (1939), सेठ बाँकेमल (1944), कृपया दाएँ चलिए (1973), हम फिदाये लखनऊ (1973), मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ (1985), चकल्लस (1986) रू उपलब्ध स्फुट हास्य–व्यंग्य रचनाओं का संकलन।

अन्य कृतियाँ : गदर के फूल (1957–1857 की इतिहास–प्रसिद्ध क्रांति के संबंध में महत्त्वपूर्ण सर्वेक्षण), ये कोठेवालियाँ (1960–वेश्याओं की समस्या पर एक मौलिक एवं अनूठा सामाजिक सर्वेक्षण), जिनके साथ जिया (1973–साहित्यकारों के संस्मरण), चौतन्य महाप्रभु (1978–आत्मपरक लेखों का संकलन), टुकड़े–टुकड़े दास्तान (1986–आत्मपरक लेखों का संकलन), साहित्य और संस्कृति (1986 – साहित्यिक एवं ललित निबंधों का संकलन), अमृत मंथन (1991–अमृतलाल नागर के साक्षात्कार, संपादक : डॉ. शरद नागर एवं डॉ. आनंद प्रकाश त्रिपाठी), अमृतलाल नागर रचनावली (संपादक : डॉ. शरद नागर, 12 खंडों में, 1992), फिल्मक्षेत्रे रंगक्षेत्रे (2003 – नागरजी के फिल्म, रंगमंच तथा रेडियो नाटक संबंधी लेखों का संकलन), अत्र कुशलं, तत्रास्तु (2004 – नागरजी एवं रामविलास शर्मा के व्यक्तिगत पत्राचार का संग्रह)

बाल साहित्य : नटखट चाची (1941), निंदिया आजा (1950), बजरंगी नौरंगी (1969), बजरंगी पहलवान (1969), बाल महाभारत (1971), इतिहास झरोखे (1970), बजरंग स्मगलरों के फंदे में (1972), हमारे युग निर्माता (1982), छरू युग निर्माता (1982), अक्ल बड़ी या भैंस (1982), आओ बच्चों नाटक लिखें (1988), सतखंडी हवेली का मालिक (1990), फूलों की घाटी (1997), बाल दिवस की रेल (1997), सात भाई चंपा (1998), इकलौता लाल (2001), साझा (2001), सोमू का जन्मदिन (2001), शांति निकेतन के संत का बचपन (2001), त्रिलोक विजय (2001)

अनुवाद : बिसाती (1935 – मोपासाँ की कहानियाँ), प्रेम की प्यास (1937 – गुस्ताव फ्लाबेर के उपन्यास 'मादाम बोवरी' का संक्षिप्त भावानुवाद), काला पुरोहित (1939 – एंटन चेखव की कहानियाँ), आँखों देखा गदर (1948 – विष्णु भट्ट गोडसे की मराठी पुस्तक 'माझा प्रवास' का अनुवाद), 5. दो फक्कड़ (1955 – कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी की तीन गुजराती नाटक), सारस्वत (1956 – मामा वरेरकर के मराठी नाटक का अनुवाद)

संपादन : सुनीति (1934), सिनेमा समाचार (1935–36), अल्लाह दे (20 दिसंबर, 1937 से 3 जनवरी 1938, साप्ताहिक), चकल्लस (फरवरी, 1938 से 3 अक्टूबर, 1938, साप्ताहिक), नया साहित्य (1945), सनीचर (1949), प्रसाद (1953–54)

सम्मान : 'बूँद और समुद्र' पर काशी नागरी प्रचारिणी सभा का विक्रम संवत 2015 से 2018 तक का बटुक प्रसाद पुरस्कार एवं सुधाकर पदक, 'सुहाग के नूपुर' पर उत्तरप्रदेश शासन का वर्ष 1962–63 का प्रेमचंद पुरस्कार, 'अमृत और विष' पर वर्ष 1970 का सेवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, वर्ष 1967 का 'अमृत और विष' पर साहित्य अकादेमी पुरस्कार, 'मानस का हंस' पर मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद का वर्ष 1972 का अखिल भारतीय वीरसिंह देव पुरस्कार, 'मानस का हंस' पर उत्तर प्रदेश शासन का वर्ष 1973–74 का राज्य साहित्यिक पुरस्कार, हिंदी रंगमंच की विशिष्ट सेवा हेतु सन 1970–71 का उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, 'खंजन नयन' पर भारतीय भाषा, कलकत्ता (कोलकाता) का वर्ष 1984 का नथमल भुवालका पुरस्कार, वर्ष 1985 का उ.प्र. हिंदी संस्थान का सर्वोच्च भारत भारती सम्मान (22 दिसंबर, 1989 को प्रदत्त), हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा साहित्य वाचस्पति उपाधि से विभूषित।

निधन : 23 फरवरी, 1990

शाम का समय था, हम लोग प्रदेश, देश और विश्व की राजनीति पर लंबी चर्चा करने के बाद उस विषय से ऊब चुके थे। चाय बड़े मौके से आई, लेकिन उस ताजगी का सुख हम ठीक तरह से उठा भी न पाए थे कि नौकर ने आकर एक सादा बंद लिफाफा मेरे हाथ में रख दिया। मैंने खोलकर देखा, सामनेवाले पड़ोसी रायबहादुर गिर्राजकिशन (गिरिराज कृष्ण) का पत्र था, काँपते हाथों अनमिल अक्षरों और टेढ़ी पंक्तियों में लिखा था—

'माई डियर प्रताप,

मैंने फुल्ली को आदेश दे रक्खा है कि मेरी मृत्यु के बाद यह पत्र तुम्हें फौरन पहुँचाया जाए। तुम मेरे अभिन्न मित्र के पुत्र हो। रमेश से अधिक सदा आज्ञाकारी रहे हो। मेरी निम्नलिखित तीन अंतिम इच्छाओं को पूरा करना—

1. रमेश को तुरंत सूचना देना। मेरी आत्मा को तभी शांति मिलेगी, जब उसके हाथों मेरे अंतिम संस्कार होंगे। मैंने उसके साथ अन्याय किया है।

2. फुल्ली को मैंने पाँच हजार रुपये दिए हैं और पाँच—पाँच सौ रुपये बाकी चारों नौकरों को। नोट मेरे तकिए में रूई की परत के अंदर हैं। उसी में वसीयत और तिजोरी की चाभी भी है। घर में किसी को यह रहस्य नहीं मालूम। तकिया अब फौरन अपने कब्जे में कर लेना। घर के भंडार—घर और संदूकों की चाभियाँ तिजोरी में हैं। रमेश के आने पर पाँच पंचों के सामने उसे सौंप देना।

3. मैंने अपनी वसीयत में यह शर्त रक्खी है कि मेरी पत्नी अगर मुझे माफ कर दे और गलत ही सही, मगर जो पतिव्रत उस पर आन पड़ा है उसे साधकर, रमेश को छोड़कर, बाइज्जत यहाँ रहे तो यह मकान और दस हजार रुपया उसे दिया जाए लेकिन यह काम उसी हालत में होना चाहिए, जबकि हम और तुम्हारे द्वारा नियुक्त मुहल्ले के चार भले आदमी मेरी पत्नी की सच्चरित्रता के संबंध में आवश्स्त हो जाएँ।'

पत्र पर छह रोज पहले की तारीख पड़ी थी। मुझे यह समझने में देर न लगी कि रायबहादुर साहब गत हो चुके हैं। पत्र मैंने बड़े बाबू के सामने मेज पर रखा दिया। इंजीनियर साहब और प्रोफेसर साहब भी झुककर पढ़ने लगे।

चाय बेमजा हो गई। हम सभी उठकर रायबहादुर साहब के यहाँ गए। उनका रोबीला चेहरा रोग और मानसिक चिंताओं से जर्जर होकर मृत्यु के बाद भी उनके अंतिम दिनों के असीम कष्टों का परिचय दे रहा था। मृत रायबहादुर के चेहरे को देखते हुए उनके साथ बीते इतने वर्षों की स्मृतियाँ मेरे मन में जाग उठी।

रायबहादुर बाबू गिर्राजकिशन बी.ए. उन हिंदुस्तानियों में से थे, जिन्हें तकदीर की चूक के कारण इंग्लैंड में जन्म नहीं मिल पाया था। उनका रंग भी गोरा न था, बल्कि गेहुएँ से काले की ओर ही अधिक झुकता हुआ था। फिर भरसक उन्होंने अपने—आपको अंग्रेजनुमा ही बनाए रक्खा। गरीब हिंदुस्तानियों पर अकड़ दिखाने में वे सदा अंग्रेजों से चार जूते आगे रहे। कई हिंदीवादियों ने उनसे शुद्ध नाम गिरिराजकृष्ण रखने को कहा, मगर वे उन्हें मूर्ख बतलाकर गिर्राज ही बने रहे। रायबहादुर गिर्राजकिशन के नाम के साथ बी.ए. जोड़ना भी नितांत आवश्यक था। सन 23 में रायबहादुर गिर्राज अपनी बिरादरी के रायसाहेब दीनानाथ की बदौलत इलाहाबाद में छोटे लाट के दफ्तर में भरती हुए थे। अपनी अंग्रेजपरस्ती और हाईक्लास खुशामद के दम पर रामबहादुर ऊँची कुर्सियों पर चढ़ बैठे। स्वराज्य होने पर आंतरिक कष्ट भोगने के बावजूद तीन वर्षों तक स्वराजी अफसरों, नेताओं और मंत्रियों की भी बाअदब खुशामद की। गिर्राज बाबू इन लोगों के सामने जिस प्रकार खुद दुम हिलाते उसी प्रकार अपने सामने अपने मातहतों की भी हिलवाते थे। आजादी के बाद भी दफ्तर में अपना भला चाहनेवाला कोई बाबू उनके आगे हिंदी का एक शब्द नहीं बोल सकता था और घर के लिए भी यही मशहूर था कि रायबहादुर की भैंस तक अंग्रेजी में ही डकारती। अगर कोई कसर थी तो सही कि श्लेडी गिर्राजश के वास्ते अंग्रेजी का करिया अक्षर भी भैंस बराबर ही था।

रायबहादुर गिर्राज पहली लड़ाई के जमाने के मॉडर्न आदमी थे। सुबह आँख खुलते ही घंटी बजाते, सफदे कोट, पतलून और साफे से लैस फुल्ली आया का लड़का घसीटे श्छोटी हाजिरीश

लेकर हाजिर होता। ठीक आठ बजे बड़ी हाजिरी पर बैठते, बेटी–बेटा साथ होते, पर लेडी गिर्राज अंडा–बिस्कुट–समाज में कभी न बैठीं। परम कट्टर छूत–पाकवाली न होते हुए भी मांस–मछली से उन्हें परहेज था। बशीरत चपरासी के बाप मुन्ने बावर्ची को हफ्ते में दो दिन ड्यूटी देनी पड़ती थी। घर के निचले हिस्से में विलायती रसोई थी। एक तरह से कहना चाहिए कि नीचे का पूरा घर ही विलायती था। वहाँ लेडी गिर्राज के बजाय फुल्ली आया का साम्राज्य था। फुल्ली पहले अंग्रेजी कोठियों में काम करती थी। अंग्रेजी ढंग से हिंदुस्थानी बोलती है। अंग्रेजी घर के कायदे जानती है। छोटी–बड़ी हाजिरी, लंच, डिनर, चाय सबका समय साधती थी, इसलिए गिर्राज बाबू के बाबू नियम से दो पेग खाने से पहले चुसकियों में मर्यादा करते थे। फुल्ली उसका इंतजाम भी बखूबी कर देती थी। इसलिए आमतौर पर मजाक–मजाक में ही मशहूर हो गया था कि रायबहादुर साहब से कोई काम करवाने के वास्ते बजाय लेडी गिर्राज के लेडी फुल्ली की सिफारिश ज्यादह पुरअसर होती है।

वैसे राजबहादुर गिर्राज में किसी ने भी कोई ऐब की बात नहीं देखी–सुनी थी, अगर ऐब था तो यही कि वे मॉडर्न थे। चुरुट मुँह में लगाए बगैर वे बात नहीं कर पाते थे। अगर कोई हिंदी सभा का चंदा माँगने आए तो उससे अकड़कर कहते कि मॉडर्न जमाने में गँवारू भाषाओं का उद्धार करना हिमाकत की बात है। धर्म के संबंध में पहले तो वे यह कहा करते थे कि यह ढोंग और पागलपन की वस्तु है, मगर बाद में उसे इंडियन कल्चर का एक सनातन रूप मानकर सहन कर जाते थे। गिर्राज साहब थोड़ा–बहुत लेने–देने का काम करते थे और उसकी बदौलत उन्होंने हैसियत भी बनाई। अच्छा मॉडर्न ढंग का मकान बनवाया। उसका नाम शदि नाइटिंगेलश रक्खा। मोटर खरीदी। सदा दो–चार नौकर पाले। घर से लेकर दफ्तर तक घड़ी साधकर सबसे ड्यूटी करवाई। पत्नी को भी मिलने के वास्ते फुल्ली के द्वारा उनसे 'अप्वाइंटमेंट' लेना पड़ता था। लेडी इससे जल–फुँक गई कि मैं फुल्ली से भी गई–बीती हो गई।

लेडी गिर्राज ने अपने फूहड़पन में उनके ऊपर एक बहुत बड़ा लांछन लगा दिया। रायबहादुर साहब सिद्धांततः और स्वभावतः अवैध रिश्तों से नफरत करते थे, इसलिए अपनी पत्नी के द्वारा झूठा लांछन लगाए जाने के बाद फिर उन्होंने कभी उनका मुँह न देखा। बड़ी लड़की के विवाह के अवसर पर उन्होंने कन्यादान इसलिए स्वयं न किया कि उन्हें पूजा के पटरे पर अपनी पत्नी के साथ बैठना पड़ता।

इसके बाद दो वर्ष में लेडी गिर्राज घुल–घुलकर मर गईंय मगर मरीं भी तो नियति के साथ षड्यंत्र करके ठीक इनके रिटायर होने के दिन। रायबहादुर गिर्राज को बहुत शिकायत हुई, अपने बेटे–बेटी से कहा, 'तुम्हारी मम्मी को कभी टाइम का सेंस नहीं रहा। अगर मरना ही था तो कल सुबह मरतीं, परसों सुबह मर सकती थीं। आज शाम को दफ्तर में मेरी फेयरवेल पार्टी हो जाने के बाद कभी मर सकती थीं। जिंदगी में एड्रेस पाने का यह पहला मौका आया था सो इस तरह तबाहोबर्बाद कर दिया। ईडियट कहीं की!'

इसके बाद, मरनेवाली तो खैर, मर ही चुकी थी मगर जो भी मातम–पुरसी के लिए मुँह बिसूरते हुए आए, उन्हें भी रायबहादुर साहब की डाँट खानी पड़ी। जो कहता कि साहब सुनकर बड़ा दुख हुआ, उससे ही कहते, 'आपको दुख करने की जरूरत क्या है? मुझे कोई दुख नहीं हुआ। जो आदमी पैदा होता है, उन सबको एक साथ फौरन मर जाना चाहिए। जाइए, मेरे यहाँ मातम–पुरसी के लिए आने की जरूरत नहीं।'

छोटी लड़की की शादी उन्होंने पत्नी की मृत्यु के तीन महीने बाद पूर्व निश्चय के अनुसार ही की। स्वयं ब्याहनेवाली लड़की और उनके पुत्र को इसमें आपत्ति थी, मगर उन्होंने किसी की एक न

सुनी, कहा, 'आई हैव नो रिगार्ड फॉर योर मम्मी। शी वाज एक परफेक्ट फूल!' लड़की की शादी बड़ी धूमधाम से की। एक आई.सी.एस. के बेटे को अपना दामाद बनाया और बहुत कुछ दान–दहेज देकर रिटायर होने के बाद भी रोब जतलाया।

लड़का रमेश तब एम.ए. फाइनल में पढ़ रहा था। नामी तेज थाय सदा फर्स्ट क्लास रेकार्ड रहा। एम.ए. के बाद आई.ए.एस. में बैठनेवाला था। लड़कीवाले अनेक व्यक्ति रमेश की माँग करने के लिए रायबहादुर की सेवा में आने लगे। रायबहादुर गिर्राज को अब मातहत क्लर्कों पर न सही तो बेटीवालों पर ही चुरुट का रोब झाड़कर भरपूर संतोष मिल जाता था। दहेज के मामले में वे पक्के मॉडर्न थे यानी पच्चीस हजार माँगते थे। एकाध पिछले जानकार ने दुहाई दी कि आप तो दहेज के विरुद्ध थे, उसको पुरानी प्रथा बतलाते थे तो बोले, 'साहब, जब मुझ से बड़े अफसर, आई.सी.एस. आदमी, यानी मेरे समधी साहब, दहेज लेने को मॉडर्न प्रथा मानते हैं तो मैंने भी अपने विचार बदल दिए हैं। निहायत साइंटिफिक बात है कि आपको दामाद चाहिए और मुझे पच्चीस हजार रुपया। मेरा रमेश आई.ए.एस. पास करेगा। आप अपनी लड़की का फ्यूचर देखकर अगर इतनी रक्कम देना स्वीकार करते हैं तो बैठिए, वरना मेरी कुरसी की गद्दी मैली मत कीजिए।'

वे ऐसी लड़की चाहते थे, जो सुंदर हो, बी.ए. हो, गाती नाचती हो, सीना–पिरोना–बुनना जानती हो, अंग्रेजी में फटाफट बात करें। अफसर किस्म के मॉडर्न मेहमानों की खातिर करने में तमीजदार हो और ऊपर से उसका बाप नगद पच्चीस हजार रुपये भी दे जाए। बिरादरी के कई अच्छी हैसियतवाले बेटियों के बापों के चेहरे रायबहादुर गिर्राज के चुरुट की अकड़ से धुआँ–छुआँ हो गए।

एक दिन इनके द्वारा नौकर रखाए गए पुराने मातहत एक सजातीय बाबू देवीशंकर पधारे गिर्राज की महिमाओं का बखान करते हुए उन्होंने कहा, 'सर, मैं आपकी च्वायस को जानता हूँ और एक लड़की मेरी नजर में है।'

इन बाबू के साथ उन्होंने रीता को देखने का अवसर पाया। रीता रायसाहब चमनलाल की इकलौती बेटी थी। रायसाहब चमनलाल ने अपने जमाने में बड़े ऐश, बड़े नाम किए। वे शहर की तवायफों के सरताज थे, रेस के घोड़ों के सरपस्त थे और बड़े ही औला–पौला आदमी थे। अपने जीवन–काल में लाखों कमाए और लाखों फूँके। एक लड़की हुई, उसे बड़े लाड़ से पाला–पोसा, पढ़ाया। हाई स्कूल तक रीता ने परीक्षाओं तथा वाद–विवाद और नृत्य–प्रतियोगिताओं में अनेक पुरस्कार प्राप्त कर अपने पिता को संतुष्ट किया था। रायसाहब विधुर थे, रीता की एक विधवा मौसी उनकी लड़की की देखभाल करने के लिए उनके यहाँ रहती थी, सो तब तरह से उनकी ही हो गई थी। रायसाहब ने आँख मूँदकर अपना घर अपनी रक्षिता साली को सौंप रक्खा था।

लड़की देखने गए तो उसकी दो चोटियों में तितलियों जैसे रिबन देखकर रायबहादुर साहब के पेंशन प्राप्त जीवन में नई रस की गुलाबी आई। अनेक वर्षों का सोया हुआ मॉडर्न पत्नी का अभाव जाग उठा।

बाद में रायसाहब चमनलाल की जन्मकुंडली के ग्रह–नक्षत्र पहटे, बड़ा घाटा आया। दिवालिए होने की नौबत आ गई। अपनी लड़की के वास्ते कुछ रकम बचाने की नीयत से उन्होंने एक बँगला अपनी साली के नाम से खरीदा और लगभग एक लाख रुपया नगद और जेवरों के रूप में बचाकर उसी के नाम से जमा करवा दिया। फिर रायसाहब दिवालिए हो गए और जिस दिन उन्हें अपनी महलनुमा कोठी सदा के लिए छोड़नी थी, उस दिन उन्होंने गहरे नशे में अपनी कनपटी पर रिवाल्वर रखकर अपनी इहलीला समाप्त कर दी। रायसाहब

की मृत्यु के बाद मौसी सयानी हो गई और रीता अनाथ।

लड़की देखने गए तो उसकी दो चोटियों में तितलियों जैसे रिबन देखकर रायबहादुर साहब के पेंशन प्राप्त जीवन में नई रस की गुलाबी आई। अनेक वर्षों का सोया हुआ मॉडर्न पत्नी का अभाव जाग उठा। लड़की रीता बातचीत में तेंज, आँखें नचाने में बाकमल और हँसने में बिजली थी। देखकर लौटे तो रास्ते में देवीशंकर से बोले, 'लड़की तो अच्छी है और दहेज का भी मुझे कोई खास नहीं, क्योंकि तुम तो जानते ही हो कि मैं इन सब मामलों में बड़ा मॉडर्न हूँ। खाली एक प्रयोजन हैं के – अ – क्या नाम के, आई मीन, तुम्हारा क्या ख्याल है, देवीशंकर, अभी तो मैं भी शादी कर सकता हूँ?'

देवीशंकर रायबहादुर को घूरते लगे। मुँह पर खुशामद से 'हाँ' के बजाय 'न' भला क्यों कर कहते। मौसी के लिए इससे बढ़कर काई शुभ संवाद न हो सकता था। अठारह वर्ष की आयु की रीता छप्पन वर्षीय रायबहादुर गिर्राजकिशन की पत्नी बनी।

और इसके बाद की तमाम बातें अपने क्रम में बढ़ गईं। रीता ने प्रथम दिन से ही अपने पति से कोई संबंध न रक्खा। हठपूर्वक अपने कमरे के अंदर बंद रही। रायबहादुर रुपये–पैसे, गहनों और खुशामदों की बड़ी–बड़ी नुमायशें लगाकर हार गए। फिर एक दिन फुल्ली ने बतलाया कि रमेश और रीता रायबहादुर द्वारा स्थापित संबंध को भूलकर परस्पर नया संबंध स्थापित कर रहे हैं। रायबहादुर आग हो गए। रमेश तब एम.ए. के अंतिम वर्ष में पढ़ रहा था। पिता ने क्रोध में अंध होकर उस पर प्रहार किया और घर से निकाल दिया। रीता तब भी उनकी न हुई।

रमेश को दो महीने बाद ही दिल्ली में कोई नौकरी मिल गई और उसके महीने–भर बाद ही रीता रायबहादुर के घर से गायब होकर दिल्ली पहुँच गई। जाने से पूर्व वह एक अलबेला काम कर गई थी। मुहल्ले के पच्चास घरों में हर पते पर उनका लिखा पोस्टकार्ड उसके गायब होने के दूसरे ही दिन पहली डाक से पहुँचा। उसमें मात्र इतना ही लिखा था– 'बाबू गिरिराजकृष्ण ने मुझे जबरदस्ती अपनी पत्नी बनाया था, मगर मैंने उन्हें कभी अपना पति न माना और न अपना धर्म ही दिया। विवाह से पहले मुझे बतलाया गया कि मैं उनके पुत्र को ब्याही जाऊँगी। तब से मैंने उनके पुत्र को ही अपना पति माना, इस घर में आकर भी उन्हें ही भगवान की साक्षी में अपने को सौंपा और अब मैं अपने पति के पास ही जा रही हूँ।'

रीता के भागने से रायबहादुर बाबू गिर्राजकिशन को इतना कष्ट नहीं पहुँचा था, जितना कि उसके द्वारा भेजे गए इस सार्वजनिक पत्र से वे दुखी हुए। इसके बाद रायबहादुर का जीवन बदल गया। उनमें पूजा–पाठ और आस्तिकता की भावना जागी, साथ ही अकेलापन भी हठ पकड़ गया। पिछले आठ वर्षों में वे एक दिन भी अपने घर से बाहर निकलकर कहीं न गए। लेन–देन का काम करते थे, वह भी धीरे–धीरे समाप्त कर दिया। मुहल्ले में किसी से भी संपर्क न रक्खा। पिछले कुछ दिनों से बीमार थे, मगर मुहल्लेवाले उनकी हालत देखने–पूछने भी न गए, जाते तो मिलते भी नहीं और अचानक मेरे पास अब यह पत्र आया।

हम सभी मुहल्लेवाले एकाएक यह निर्णय न कर पाए कि इस स्थिति में क्या करना चाहिए। वैद्यजी और बड़े बाबू इस पक्ष में थे कि पुलिस को सूचना दे दी जाए और इस पत्र को लिखी हुई बातों का अमल भी कानून के हाथों ही हो, परंतु मैं तो मृत व्यक्ति की अंतिम इच्छा पूरी करने के पक्ष में था। रायबहादुर कैसे भी रहे हों, इसी मुहल्ले के थे। कइयों को उन्होंने कभी नौकरियाँ भी दिलाई थीं, उपकार किया था। इंजीनियर साहब भी मेरे ही मत के थे। बाद में सभी राजी हो गए। मुहल्ले के एक मित्र के पास रमेश के पत्र आया करते थे। उसी से पता लेकर तार भेजा गया, जिसमें यह स्पष्ट लिख दिया था कि यदि कल प्रातःकाल तक तुम स्वयं अथवा तुम्हारा पत्र उत्तर न आएगा तो रायबहादुर की अंत्योष्टि क्रिया मुहल्लेवालों द्वारा ही पंचनामें से संपन्न कर दी जाएगी।

सुबह चार बजे तार का जवाब आया कि रमेश टैक्सी द्वारा दिल्ली से चल रहा है और सुबह तक पहुँच जाएगा। प्रातःकाल करीब–करीब सभी मुहल्लेवाले रायबहादुर के घर पर उपस्थित थे, तभी टैक्सी दरवाजे पर रुकी। रमेश, रीता और तीन बच्चे उतरे। रमेश के मुँह पर तो सामाजिक लज्जा और संकोच की मलिन छाया थी, परंतु रीता का चेहरा सतेज और निर्विकार था।

रीता के आने का संवाद पाकर अनेक स्त्रियाँ कौतूहलवश आ गईं। रीता ने रायबहादुर की लाश के पास अपनी चूड़ियाँ तोड़ीं और माँग का सिंदूर पोंछा। रमेश ने पिता का अंतिम संस्कार किया। स्त्रियाँ रीता से तरह–तरह के प्रश्न करती थीं, परंतु वह कोई उत्तर न देती थी। क्रियाकर्म इत्यादि में रायबहादुर के सजातीय, नाते–रिश्तेदार आदि बहुत कम आए। ब्रह्मभोज में गरीबी से एकदम टूटे हुए ब्राह्मण ही आए। किसी प्रकार क्रियाकर्म समाप्त हुआ। रमेश के वहाँ से चलने का समय आया।

मैंने रायबहादुर के अंतिम पत्र के अनुसार संभ्रांत मुहल्लेवालों के साथ रीता–रमेश को बुलाकर सबके सामने उनका वह अंतिम पत्र पढ़ा और वह तकिया, जो मुहरबंद पेटी में मैंने रखवा दिया था, खुलवाया। फुल्ली और नौकरों को रायबहादुर की इच्छानुसार रुपये दे दिए गए। रायबहादुर की अंतिम माँग पर रीता का निर्णय सुनने के लिए हम सभी उत्सुक बैठे थे। रीता बोली, ष्मैं धर्म और ईश्वर के सम्मुख सच्चरित्र हूँ। मैंने अपने तन–मन से उन्हें सदा ससुर ही माना। धार्मिक कानून की जिस मजबूरी से उन्होंने मुझे अपनी पत्नी बनाया था, उसे मैंने विधिवत उनकी लाश को सौंप भी दिया। उनकी चूड़ियाँ, उनका सिंदूर उन्हें सौंपा, लेकिन मेरी चूड़ियाँ, मेरा सिंदूर अक्षय है।ष कहकर उसने देर से अपने हाथ के नीचे दबी हुई रूमाल की पोटली को उठाया, उसमें हरी चूड़ियाँ थीं और एक चाँदी की डिबिया थी। चूड़ियाँ पहनीं और डिबीया खोलकर रमेश की ओर रखते हुए बोली, 'जिन्होंने मेरी गोद भरी है, उन्होंने मेरी माँग भी भरी है– लीजिए मेरी माँग भर दीजिए।'

रमेश ने रीता की माँग में सिंदूर की रेखा खींच दी। फिर रीता बोली, 'घर के संबंध में मुझे केवल यही कहना है कि अगर आप पाँच पंच मुझे दुश्चरित्र मानते हों तो उसे धर्मशाला बना दीजिए।'

हममें से कोई खम ठोंककर एकाएक यह नहीं कह पाया कि रीता दुश्चरित्र है। मैंने अनुभव किया कि सभी के मनों को इस प्रश्न से धक्का लगा था। अपने परंपरागत धार्मिक, सामाजिक संस्कारों के कारण हम रीता को सचरित्रा मानने से भी मन ही मन हिचकते थे, पर यों क्या कहें।

रीता हमारी हिचक पर एक बार कहकर उठ गई। उसने कहा, 'मुझे रायबहादुर साहब का घर और दस हजार रुपये पाने की इच्छा नहीं। मेरे पति ने मुझे सुहाग की छाँव दे रक्खी है। लेकिन मैं आपके सामने कसौटी रखती हूँ – बोलिए घर किसका है?'

घर को छोड़कर बाकी सब सामान के साथ रमेश, रीता और उनके बच्चे दिल्ली चले गए। हम अभी तक कोई निर्णय नहीं कर पाए। घर की चाभी मेरे पास है। वह तोले डेढ़ का लोहे का टुकड़ा इस समय मेरे मन–प्राणों का बोझ बना हुआ है।

(1961, 'एक दिल हजार अफसाने' में संकलित)

अगर मैं तुमको
ललाती साँझ के नभ की
अकेली तारिका अब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार–न्हायी कुंई,
हल्की कली चम्पे की
वगैरह, तो
नहीं कारण कि
मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है।
बल्कि केवल यही;
ये उपमान मैले हो गए हैं
देवता इन प्रतीकों से कर गए हैं कूच!

–अज्ञेय

ISSN : 2319-2178

कलम को नमन

कविता

मैथिलीशरण गुप्त

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी के प्रमुख कवि थे। महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की प्रेरणा से आपने खड़ी बोली को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया और अपनी कविता के द्वारा खड़ी बोली को एक काव्य–भाषा के रूप में निर्मित करने में अथक प्रयास किया और ब्रजभाषा जैसी समृद्ध काव्य–भाषा को छोड़कर समय और संदर्भों के अनुकूल होने के कारण नये कवियों ने इसे ही अपनी काव्य–अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। हिन्दी कविता के इतिहास में गुप्त जी का यह सबसे बड़ा योगदान है। पवित्रता, नैतिकता और परंपरागत मानवीय सम्बन्धों की रक्षा गुप्त जी के काव्य के प्रथम गुण हैं, जो पंचवटी से लेकर जयद्रथ वध, यशोधरा और साकेत तक में प्रतिष्ठित एवं प्रतिफलित हुए हैं। साकेत उनकी रचना का सर्वोच्च शिखर है।

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 03 अगस्त, 1886 ई. में पिता सेठ रामचरण कनकने और माता कौशिल्या बाई की तीसरी संतान के रूप में उत्तर प्रदेश में झांसी के पास चिरगांव में हुआ। माता और पिता दोनों ही वैष्णव थे। वे 'कनकलताद्ध' नाम से कविता करते थे। विद्यालय में खेलकूद में अधिक ध्यान देने के कारण पढ़ाई अधूरी ही रह गयी। घर में ही हिन्दी, बंगला, संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया। मुंशी अजमेरी जी ने उनका मार्गदर्शन किया। 12 वर्ष की अवस्था में ब्रजभाषा में कविता रचना आरंभ किया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपर्क में भी आये। उनकी कवितायें खड़ी बोली में मासिक 'सरस्वती' में प्रकाशित होना प्रारम्भ हो गईं। प्रथम काव्य संग्रह 'रंग में भंग' तथा बाद में 'जयद्रथ वध' प्रकाशित हुए। उन्होंने बंगाली के काव्य ग्रंथ 'मेघनाथ वध' और 'ब्रजांगना' का अनुवाद भी किया। सन् 1914 ई. में राष्ट्रीय भावनाओं से ओत–प्रोत 'भारत भारती' का प्रकाशन किया। उनकी लोकप्रियता सर्वत्र फैल गई। संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रंथ 'स्वप्नवासवदत्ता' का अनुवाद प्रकाशित कराया। सन् 1916–17 ई. में महाकाव्य 'साकेत' की रचना आरम्भ की। उर्मिला के प्रति उपेक्षा भाव इस ग्रंथ में दूर किये। स्वतः प्रेस की स्थापना कर अपनी पुस्तकें छापना शुरु किया। इसी समय वे राष्ट्रपिता गांधी जी के निकट सम्पर्क में आये। गांधी जी ने उन्हें 'राष्टकवि' की संज्ञा प्रदान की। सन् 1941 ई. में व्यक्तिगत सत्याग्रह के अंतर्गत जेल गये। आगरा विश्वविद्यालय से उन्हें डी.लिट. से सम्मानित किया गया। 1952–1964 तक राज्यसभा के सदस्य मनोनीत रहे। सन् 1953 ई. में भारत सरकार ने उन्हें 'पद्म विभूषण' से सम्मानित किया। तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने सन् 1962 ई. में अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के द्वारा डी.लिट. से सम्मानित किये गये। 1954 ई. में साहित्य एवं शिक्षा क्षेत्र में 'पद्म भूषण' से सम्मानित किया गया। इसी वर्ष प्रयाग में 'सरस्वती' के स्वर्ण जयन्ती समारोह का आयोजन हुआ, जिसकी अध्यक्षता गुप्त जी ने की। सन् 1963 ई. में अनुज सियाराम शरण गुप्त के निधन ने अपूर्णनीय आघात पहुंचाया। 12 दिसंबर 1964 ई. को दिल का दौरा पड़ा और साहित्य का जगमगाता तारा अस्त हो गया। 78 वर्ष की आयु में 02 महाकाव्य, 19 खण्डकाव्य, काव्यगीत, नाटिकायें आदि लिखी। उनके काव्य में राष्ट्रीय चेतना, धार्मिक भावना और मानवीय उत्थान प्रतिबिम्बित है। 'भारत भारती' के तीन खण्ड में देश का अतीत, वर्तमान और भविष्य चित्रित है। वे मानववादी, नैतिक और सांस्कृतिक काव्यधारा के विशिष्ट कवि थे।

ISSN : 2319-2178

नर हो न निराश करो मन को

नर, हो न निराश करो मन को।
नर हो न निराश करो मन को।।

कुछ काम करो कुछ काम करो।
जग में रहके निज नाम करो।।
यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो।
समझो जिसमें यह व्यर्थ न हो।।
कुछ तो उपयुक्त करो तन को।
नर हो न निराश करो मन को।।

संभलो कि सुयोग न जाए चला।
कब व्यर्थ हुआ सदुपाय भला।।
समझो जग को न निरा सपना।
पथ आप प्रशस्त करो अपना।।
अखिलेश्वर है अवलम्बन को।
नर हो न निराश करो मन को।।

जब प्राप्त तुम्हें सब तत्त्व यहाँ।
फिर जा सकता वह सत्त्व कहाँ।।
तुम स्वत्त्व सुधा रस पान करो।
उठके अमरत्व विधान करो।।
दवरूप रहो भव कानन को।
नर हो न निराश करो मन को।।

निज गौरव का नित ज्ञान रहे।
हम भी कुछ हैं यह ध्यान रहे।।
सब जाय अभी पर मान रहे।
मरणोत्तर गुंजित गान रहे।।
कुछ हो न तजो निज साधन को।
नर हो न निराश करो मन को।।

आर्य

हम कौन थे, क्या हो गये हैं, और क्या होंगे अभी
आओ विचारें आज मिल कर, यह समस्याएं सभी

भूलोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला स्थल कहां
फैला मनोहर गिरि हिमालय, और गंगाजल कहां

संपूर्ण देशों से अधिक, किस देश का उत्कर्ष है
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन, भारतवर्ष है

यह पुण्य भूमि प्रसिद्ध है, इसके निवासी आर्य हैं
विद्या कला कौशल्य सबके, जो प्रथम आचार्य हैं

संतान उनकी आज यद्यपि, हम अधोगति में पड़े
पर चिन्ह उनकी उच्चता के, आज भी कुछ हैं खड़े

वे आर्य ही थे जो कभी, अपने लिये जीते न थे
वे स्वार्थ रत हो मोह की, मदिरा कभी पीते न थे

वे मंदिनी तल में, सुकृति के बीज बोते थे सदा
परदुःख देख दयालुता से, द्रवित होते थे सदा

संसार के उपकार हित, जब जन्म लेते थे सभी
निश्चेष्ट हो कर किस तरह से, बैठ सकते थे कभी

फैला यहीं से ज्ञान का, आलोक सब संसार में
जागी यहीं थी, जग रही जो ज्योति अब संसार में

वे मोह बंधन मुक्त थे, स्वच्छंद थे स्वाधीन थे
सम्पूर्ण सुख संयुक्त थे, वे शांति शिखरासीन थे

मन से, वचन से, कर्म से, वे प्रभु भजन में लीन थे
विख्यात ब्रह्मानंद नद के, वे मनोहर मीन थे

ISSN : 2319-2178

कविताएं

शबनम शर्मा

कागज

शायद नहीं जानता
ये अबोध बालक,
इस कागज के
टुकड़े की कीमत,
तभी मरोड़ रहा,
फाड़ रहा और हँस रहा।
हो जायेगा बड़ा,
सिखायेगा यही कागज
इसे सबक,
जब सामने आयेगी
पोथी, पैसा और
हर खाना कागज में
लिपटा,
बन जायेगा कागज ही
उसकी कसौटी
कभी रिजल्ट, तो कभी
परीक्षा, कभी प्रश्न तो
कभी उत्तर, कभी चिट्ठी
तो कभी जवाब।
कभी रसाले तो कभी
अखबार,
कभी हँसी, तो कभी दुलार।
नहीं होगा उसका
रिश्ता इससे खत्म,
लाठी टेकने तक,
अरे नहीं मरणासन पर
भी ले आएगा कोई
कागज,
पकड़ कर लगवा देगा
अंगूठा, खींच लेगा
तस्वीर कागज पर
और फिर बहा दिया
जायेगा इक पुड़िया
बनाकर गंगा के
पानी में नाव की
तरह इस कागज पर।

वो पल

वो पल जब तुम आये,
मेरा हाथ माँगने, पर
निकाल दिये गये घर से,
ये कहकर,
''तुम्हारी जाति
हमसे मेल नहीं खाती।''

टूट गई मैं
ब्याह दी गई अपनी जाति में,
जहाँ सदैव कुंठित रही,
एक भी साँस आजाद न था,
जलालत की हदें पार थी,
प्यार का मतलब सिर्फ
स्वार्थ ही था।

बर्बाद हो गया
मेरा सम्पूर्ण अस्तित्व।
मैं सिर्फ बनी
उनके घर का इक पायदान।

याद आता मुझे सदैव
तुम्हारा वो बाँहों में समेटना,
छोटी–छोटी बात पर मुझे संभालना,
कहाँ थी जाति,
सिर्फ मन और आप।
क्यूँ बंधते हैं हम
इन ढकोसलों में
मन की जगह।

संपर्क
अनमोल कुंज, पुलिस चौकी के पीछे,
मेन बाजार, माजरा, तह. पांवटा
साहिब, जिला सिरमौर, हि.प्र.

ISSN : 2319-2178

कविताएं

बाकी है

शहंशाह आलम

ठूँठ हो चुके पेड़ में
बाकी है एक हरा पत्ता
उसके और मेरे बीच के
आलिंगन की याद बचाए

बारिश के बाद हर बार
हरा हो जाता है जंगल
पुराने घरों को चमकाते

यह पेड़ ठूँठ हो चुका तब भी
रह गए हरे पत्ते की तरह
इस पहाड़ पर इस देवदार के बीच
बाकी है आत्मा के उजास जितना प्रेम
उसके बार–बार ना चाहते हुए भी।

कहाँ मिलेगी पृथ्वी

तोते कुतरते हैं अमरूद
अपने इस काम में डूबे हुए मग्न
पृथ्वी के दुखों को कम करते
आदमी तोड़ता है रोज थोड़ा–थोड़ा
इस पृथ्वी को
अपने लिए अँधेरे को जरा–सा और बढ़ाता हुआ

यह पृथ्वी तोतों के लिए एक घर है हमेशा से
आदमी के लिए एकांत में पड़ी
एक स्त्री है शायद
जिसे वह अपनी वस्तु
समझता रहा है बलात्कारी

एक दिन आदमी पूछता फिरेगा
कहाँ पर है पृथ्वी
तोते हँसेंगे गिलहरियाँ झल्लाएँगी नेवले बिदकेंगे
आदमी के इस प्रश्न पर इसलिए कि पृथ्वी पर
कोई उत्तर कहाँ बचा रहेगा
ऐसे आदमियों के रहते।

संपर्क : **हुसैन कॉलोनी, नोहसा रोड,**
पेट्रोल पाइप लेन के नजदीक,
फुलवारीशरीफ, पटना–801505

महेश चन्द्र त्रिपाठी

श्रम की महत्ता

श्रम से ही धरती हरी–भरी
श्रम से ही बहती है गंगा
श्रम करनेवाला आजीवन
रहता है बना भला–चंगा
मरुथल उर्वर बनते श्रम से
श्रम से पर्वत पथ देते हैं
श्रम करनेवाले सभी जगह
पहचान बना निज लेते हैं
हर श्रम करनेवाला महान
चाहे नर हो या हो नारी
श्रमजीवी की प्रशस्ति गाती
रहती युग–युग दुनिया सारी
हो जाती दिशा–दिशा दीपित
जंगल हो जाता मंगलमय
बाधाएँ करतीं पथ प्रशस्त
होती श्रमजीवी की जय–जय
आओ हम ऐसे यत्न करें
जिससे श्रम का परिहास न हो
श्रम की निन्दा न करे कोई
श्रमिकों को कोई त्रास न हो
श्रम–निष्ठा के बल पर जग में
भारत भू की पहचान बने
सबका भविष्य हो भासमान
औ' अपना राष्ट्र महान बने

संपर्क
आर–115 खुशवक्तराय नगर,
फतेहपुर 212601 (उ.प्र.)

कविताएं

✍ पूजा अनिल

कहानी में लड़का

1. आहट

वह लड़का जो उस राह पर
रोज करता था प्रतीक्षा,
एक दिन बेचौनी ओढ़
आया तोप सा दनदनाता हुआ और
उड़ेल दिया अपना दिल लड़की को रोक कर।

प्रणय निवेदन से पहले
हजार बार लाखों बार
उसने टटोला खुद को,
धड़कते दिल को थम जाने की ताकीद की
गुस्साया खुद पर
झल्लाया मन ही मन इस स्वीकृति पर
रोकना चाहा प्रेम को खुद ही तक।

इस सारे गुस्से, झल्लाहट और संकीर्णता से परे
मन की उद्दात लहरों पर
उसने खोजी एक राह उम्मीद की,
दिन भर कवायद के बाद भी
नई ऊर्जा से दमकते हुये
प्रेम में थिरकने का जज़्बा जगाया उसने।

किये कई नाराज पल स्वाहा
बस एक प्रेम अनुभूति जीने की चाह में
वो मुस्काया हर उस उदास पल में
जब अचानक खवाबों की तस्वीर ने
किया जेहन पर कब्जा
जब चूमा उसने अपनी प्रिया को
नशे में या होश में,
जब ऊँगली में फँसी सिगरेट की जलन से
याद आया उसे कि
अभी आलिंगन का सुख पेंडिंग है।

हसरतें छलक जाने के पल में,
जब मचल मचल रोया उसका किशोर मन
और खयालों में लड़की को समर्पित प्रेम
पुनः पा लेने का हौसला
उसके कंधों पर तमगा बन झिलमिलाया,
तब आवेग में किया उसने प्रेम निवेदन,
बिना यह जाने
कि लड़की ने हजार बरस पहले
उसके आने की आहट
बंद पलकों पर रखे
प्रेम के फाहों से सुन ली थी।

2. याद गली

वह छत पर उडाता है पतंग
दौड़ता है रेल की पटरियों पर
खींचता है, डोर पतंग की तन जाती है
थम जाती है रेल, दिखती है
खिड़की के पार दादी माँ
सुबह सवेरे कराती है मंजन
खिलाती है चाय में डूबा जीरा टोस्ट
पीछे आते हैं दादाजी
झक्क सफेद दूध का गिलास उठाये
ठीक उतना ही गर्म,
जिस से न जीभ जले न दिल
उसकी पतंग उड़ान भरती है
रुक जाती हवा में ही माँ के प्रवेश से
नहलाकर यूनिफॉर्म पहनाती है माँ
बुआ खिलाती है दही परांठे का नाश्ता
सब विदा करते हैं,
स्कूल पहुंचाते हैं पिता
शाम को लेने आते हैं चाचा
फिर चल पड़ती है थमी रेल
समय के अबूझ रथ पर
हवा में मचल उठती है पतंग
कसने लगता है मांझा
पेंच लड़ाता है वो,
चांदनी की छत पर
(बचपन में उसे चाँद पुकारता था)
देखता था उसके पारभासी कंठ से
किस तरह उतरता था पानी
फिर आईने के सामने पिया किया पानी
अपारदर्शी नेक बोन हिलती
हँस पड़ता वो कुदरत के दोगलेपन पर
लहू उभर आया है डोर थामे हुए
उसकी रेल ठहरी प्रथम स्पर्श पर
झुरझुरी ने हवा दी
लालायित किया छूने को
एक बल खाती है पतंग
आकाश चूमती है
दौड़ पड़ती है वेगवान रेल
दोनों पटरियों पर टिकी
लड़का गिनता है रेल के डिब्बे
रेल वही है, पटरी वही
डिब्बों की संख्या
बदल जाती है
हर बार, पतंग नए रंग की।

3. स्त्री देह में

मुंडेर पर पाँव झूलाता है, सामने
देखता है झूले पर उमगती लड़की
बचपन से सीखा था उसने,
लड़के पतंग उड़ाते हैं
कबड्डी खेलते हैं
तैर कर नदी पार जाते हैं,
झूला लडकियां झूलती हैं,
श्रृंगार के लिए आइना देखती हैं
हंसी ठिठोली में शाम नष्ट करती हैं
तब से झूले पर नहीं बैठा वो
हैरानी होती उसे कि
उसके भीतर कोई स्त्री तत्त्व नहीं रहता!!
जो कुछ था वो क्यों बस पुरुषत्व था?
स्त्री पुरुष का अलगाव उसे बुरा लगता
धारणाओं में बदलाव चाहता था
चाहता था कि उसकी बावरी
खेतों में उसके साथ दौड़े
तैर कर नदी पार चले
चाहता था कि बावरी के झूले में
वह भी सवार हो चाँद छू ले
कल्पनाओं में कई बार
घेरदार घाघरा चुनर ओढ़
बावरी सा घूमर नृत्य किया उसने
आईने के आगे काजल पहना
माथे पर टिकुली सजाई
कई बार बढ़ाई झूले पर पेंग,
कई बार सेकी बाजरी की रोटी
अपने हाथों से खिलाई प्याज संग
अपनी रूपमती स्त्री को, उसके
पग पखार पंखा झलता रहा
तभी खेत से गुजरती हुई
माँ सामने आ खड़ी हुई उसके
कल्पनाएँ हलकी थी, हवा हुई
माँ के आगे नजर न उठा पाया
झेंप कर मुंडेर से गिर पड़ा वो
बावरी ने लपक कर थामा
खुद लोट गई उसके पाँव तले
माटी सनी उसकी देह
पुरुषत्व को लगी बल देने!

संपर्क
कल्ले दे ला मकुइनिल्ला
13–ए, पिसो 7–3
मेड्रिड (स्पेन) 28031

बृजेश कुमार अग्निहोत्री 'पेण्टर'

एक छछूंदर नागराज को छेड़ रही है

दौड़ो–दौड़ो हे विषधर, अब मुझको पकड़ो,
देखूँ मैं फुंफकार जरा तुम मुझको जकड़ो।
तेरे वदन में रगड़ लगा बदबू भर दूंगी,
गिन–गिन कर तेरे रहमों का बदला लूंगी।
कहती है, तुम शेर भले वो भेड़ नहीं है।
एक छछूंदर नागराज को छेड़ रही है।।

भले खतम हो जाऊं मैं परवाह नहीं है,
निज कुनबे का मान बढ़ाऊं चाह नहीं है।
सदा गटर को स्वर्ग समझते बच्चे मेरे,
गोबर गंध प्रसारण साथी सच्चे मेरे।
जिसे खोखला किया बची वो मेड़ नहीं है।
एक छछूंदर नागराज को छेड़ रही है।।

रहे निगलते चूहे मेढक और परिन्दे,
नही पड़े हो अभी किसी मूरख के फन्दे।
तेरे विष में क्या दम है औकात दिखा दूं,
मैं कितनी जहरीली हूं, ये बात बता दूं।
मरकर अंधा कर दू लाग–लभेड़ नहीं है।
एक छछूंदर नागराज को छेड़ रही है।।

भले चलूं मैं काटों में परवाह नहीं,
सुख–सुविधा उपभोग करूं ये चाह नहीं।
नयी पीढ़ियां मेरे गुण गायें ना गाये,
मेरी व्यथा–कथा में सुख पायें ना पायें।
पत्थर में फल दे–दे ऐसा पेड़ नहीं है।
एक छछूंदर नागराज को छेड़ रही है।।

संपर्क
ग्राम–खरौली, पोस्ट–मिराईं,
जिला–फतेहपुर, उ.प्र.– 212 665

कविताएं

हम साँवली सी लड़कियाँ

धूप हैं हवा हैं
आँधी और बयार हैं
खुशबुओं का त्योहार हैं
हम साँवली सी लड़कियाँ!

शक्ति हैं भक्ति हैं
संस्कृति और संस्कार हैं
वेद ऋचाओं की गुंजार हैं
हम साँवली सी लड़कियाँ!

मुखर हैं शाँत हैं
श्रृंगार और संहार हैं
तलवारों की टंकार हैं
हम साँवली सी लड़कियाँ!

आदि हैं अंत हैं
सृजक और संसार हैं
जीवन स्तंभ आधार हैं
हम साँवली सी लड़कियाँ!

माँ हैं बेटी हैं
वात्सल्य और प्यार हैं
रिश्तों की सूत्रधार हैं
हम साँवली सी लड़कियाँ!

हास है उल्लास हैं
तकरार हैं मनुहार हैं
श्रद्धा–विश्वास का सार हैं
हम साँवली सी लड़कियाँ!

संघर्ष हैं समर्पण हैं
अभिमान हैं अधिकार है
ध्वजों की जय–जयकार है
हम साँवली सी लड़कियाँ!

डॉ. पारुल तोमर

शक के अंकुर

कल मैंने
एक लम्हें पर
'विश्वास' लिखना चाहा
पर असफल रही
तभी तुम आए
शरारत से मुस्काए
तुमने उसी लम्हें पर
आसानी से 'शक' लिखा
तुरंत शक के
अंकुर फूटे
सुबह होते–होते
शहर में जंगल उग आए
शक के अंकुर कब
अफवाहों के जंगल बन गए
किसी को कानों–कान भी
खबर न हुई
अभी–अभी रेडियो पर सुना
शहर में एक बार फिर
दंगों का तूफान आया है!

संपर्क
फ्लैट नं. 8/5,
एनएसआईटी परिसर,
से–3, द्वारका, नई दिल्ली–78

ISSN : 2319-2178

कविताएं

भूचाल

✍ *अनुपमा सरकार*

दफ्तर की रेलमपेल में
पुराने सियासती खेल में
अमूमन बीत जाता है वक्त
बेशकीमती ईमारत में सजे
गुमशुदा कागजों की ईबारत में

कुछ यूँ आदत हो चुकी है
ढर्रे पर जीने की कि
शोरगुल की आवाजें
अब सुनाई भी नहीं देतीं
साधारण सा दिन था आज
कुछ ऊबाऊ भी
घिरी थी अनजान भीड़ में
कोई अपना पास नही
पर अचानक बदलाव आया
कोई कातर स्वर में चिल्लाया
मर जाआगे दब जाआगे
बाहर निकल आओ
मेरे ही जैसे कुछ पांच चेहरों ने
एक साथ सर उठाया
शायद फिर से भूकंप आया
धरती डोल रही थी
हमारी खोई मनस्थिति
मुखर हो चली थी

दिमाग हरकत में आया
साधारण सा दिन
आपाधापी में बदलने लगा
मंजर वही था पर नजारा बदलने लगा
सभी आतुर थे खुद को बचाने को
जाने क्या बचा है जिसे जिलाने को

यकायक माहौल में गरमी आई
फोन बजने लगे, खबरें मिलने लगीं
हाँ, है भूचाल ही
सचमुच धरा नियंत्रण खो रही

पर विश्वास करना आसान नहीं
आखिर मन की उथलपुथल भी
भूकंप से कम तो नहीं

दो तीन मिनट खौफ का बाजार गरम रहा
फिर हौले हौले हंसी ठठ्ठा गूंजने लगा
बेफिक्री का धुआं सर उठाने लगा

जीवन कायम था
एक खतरा और बीत चुका था
और यंत्रवत चलती इस मुर्दा दुनिया में
हर इंसान फिर खुद में खो चुका था !

सामाजिक न्याय

निश्छल आँखें
खारे आंसू
भोली मुस्कान
बिखरे बाल
शरारती भवें
पसरे हाथ

सड़क किनारे पलते
उस बचपन को देखकर
सीने में हूक सी उठती है
कर्मों का लेखा जोखा
ईश्वरीय चमत्कार
सामाजिक न्याय
खोखले से शब्द
कलेजे में
पिघले शीशे से
उतर आते हैं
और सोचने लगती हूँ
कुछ आरम्भ
अंत कोख में लेकर
जन्मते हैं!

संपर्क
126 ए, डी डी ए फ्लैट, विक्रान्त एन्क्लेव,
मायापुरी, नई दिल्ली – 110064

विकास द्विवेदी

वह खुश है विमुद्रीकरण के बाद

वह खुश है
कि उदार अर्थव्यवस्था के सबसे बड़े फैसले
विमुद्रीकरण के बाद भी
वह पूरी तरह सुरक्षित है
सुरक्षित हैं
उसके बीबी बच्चे
भाई बहन
माँ बाप
वह खुश है
वह खुश है
कि बैंक के बाहर एक किलोमीटर लंबी
लाइन में चार घंटे खड़े रहने
और धक्के खाने के बाद
आखिरकार कुछ रुपए पा गया
दो दिन पहले उसे नहीं मिले थे
उसका नंबर आते आते खत्म हो गया था
बैंक में कैश
जैसे एटीएम के बाहर वाली लाइन में हुआ
वह खुश है
कि देश की एक बडी फोन कंपनी ने
ग्राहकों को लुभाने के लिए
कुछ दिनों के लिए दिया है
मुफत कालिंग और इंटरनेट ऑफर
प्रधानमन्त्री की तश्वीर के साथ
वह खुश है
कि बैंकों ने लांच कर दिए हैं ई–वालेट
उसने डाउनलोड कर लिया है मोबाइल में
ई–वालेट और पेटीएम वगैरह
और मोबाइल को बना लिया है
अपना इलेक्ट्रानिक बटुआ
वह खुश है
कि इसी से खरीद लाया है
दाल चावल आटा नमक और तेल
सब्जी नहीं मिल रही इससे
तो न मिले
फटे हुए झोले
और फटे हुए जूते से ही चला लेगा काम
देश हित में इतना त्याग तो वह करेगा ही
आदर्श नागरिक की भांति
वह खुश है
कि सरकार ने दी हैं
डिजिटल लेनदेन को कई रियायतें
वह खुश है
चौतरफा इतने हो–हल्ले
और हाहाकार के बावजूद
जब तमाम जिन्दगियां लगीं हैं दांव पर
वह है सही सलामत
इस उदार अर्थ व्यवस्था में
वह भी खुश है
जो है खनन माफिया
उसने बैंक अधिकारी से मिलीभगत कर
बीस करोड की नकदी को
काले से सफेद किया
वह भी खुश है
जो है कारपोरेट दिग्गज
हजार अरब की कंपनी का मालिक
उसने पचास करोड के डालर खरीद
कर लिया काले को सफेद
खुश है
कि बैंक से जल्द मिलेगा
तमाम सस्ता कर्ज
वह भी खुश है
जो है नौकरशाह
खरीद लिया तमाम सोना
उदार अर्थ व्यवस्था निकाल ही देती है
बहुतों की खुशी का कोई न कोई रास्ता

संपर्क
गम्हरी, फतेहपुर (उ.प्र)

ISSN : 2319-2178

सबसे बड़ी चीज होती है– व्यक्ति के अंदर की अनुभूति!

सूर्यबाला

जन्म : 25 अक्टूबर, 1943 ई. वाराणसी में।
शिक्षा : काशी हिंदू विश्वविद्यालय से हिंदी साहित्य में पीएच.डी.।
कार्यक्षेत्र : कार्य का प्रारंभ आर्य महिला विद्यालय में अध्यापन से। 1972 ई. में पहली कहानी 'सारिका' में प्रकाशित। 1975 ई. में बंबई आने के बाद लेखन में विशेष प्रगति। 1975 ई. में प्रकाशित पहला उपन्यास 'मेरे संधिपत्र' विशेष रूप से चर्चित। डॉ. सूर्यबाला ने अभी तक 150 से अधिक कहानियाँ, उपन्यास, व हास्य व्यंग्य लिखे हैं। इनमें से अधिकांश हिंदी की प्रसिद्ध पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। अनेकों आकाशवाणी व दूरदर्शन पर प्रसारित हुए हैं, और बहुतों का देश–विदेश की अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ है। देश–विदेश के रेडियो व टीवी चौनलों से उन्होंने अपनी रचनाओं का पाठ किया है और अनेक रचनाएँ कक्षा आठ से लेकर स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर तक के पाठ्यक्रमों में शामिल हैं।
सम्मान/पुरस्कार : साहित्य में योगदान के लिए प्रियदर्शिनी पुरस्कार, घनश्याम दास सराफ पुरस्कार, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सतपुड़ा लोक संस्कृति परिषद, अभियान, मुंबई विद्यापीठ, व्यंग्य–श्री पुरस्कार, रत्नीदेवी गोइन्का वाग्देवी पुरसकार, राजस्थान लेखिका मंच वाग्मणि सम्मान, आजीवन उपलब्धि सम्मान, सवजन, हरिशंकर परसाईं स्मृति सम्मान, अभियान, आरोही, अखिल भारतीय कायस्थ महासभा, आदि संस्थाओं से सम्मानित।
प्रमुख कृतियाँ : **उपन्यास :** मेरे संधि पत्र, सुबह के इंतजार तक, अग्निपंखी, यामिनी–कथा, दीक्षांत।
कहानी संग्रह : एक इंद्रधनुष, दिशाहीन, थाली भर चाँद, मुँडेर पर, गृह–प्रवेश, सांझवाती, कात्यायनी संवाद, इक्कीस कहानियाँ, पाँच लंबी कहानियाँ, सिस्टर प्लीज आप जाना नहीं, मानुषगंध, वेणु का नया घर, प्रतिनिधि कहानियाँ, सूर्यबाला की प्रेम कहानियाँ, इक्कीस श्रेष्ठ कहानियाँ, समग्र कहानियाँ आदि।
व्यंग्य : अजगर करे न चाकरी, धृतराष्ट्र टाइम्स, देशसेवा के अखाड़े में, भगवान ने कहा था, झगड़ा निपटारक दफ्तर।
दूरदर्शन धारावाहिक : पलाश के फूल, न किन्नी न, सौदागर दुआओं के, एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम, सबको पता है, रेस तथा निर्वासित आदि प्रमुख हैं। सजायाफ्ता कहानी पर बनी टेलीफिल्म पुरस्कृत।

समकालीन कथा–साहित्य में सूर्यबाला का लेखन अपनी विशिष्ट भूमिका और महत्त्व रखता है। समाज, जीवन, परंपरा, आधुनिकता एवं उससे जुड़ी समस्याओं को सूर्यबाला एक खुली, मुक्त और नितांत अपनी दृष्टि से देखने की कोशिश करती हैं। उसमें न अंध–श्रद्धा है न एकांगी विद्रोह। प्रस्तुत है 'मधुराक्षर' की प्रबंध संपादक ***डॉ. ऋचा द्विवेदी*** *से हुई अंतरंग वार्ता के प्रमुख अंश!*

संपर्क : **बी–504, रुनवाल सेंटर, गोवंडी स्टेशन रोड, देवनार, मुंबई – 400088**

ISSN : 2319-2178

डॉ. ऋचा द्विवेदी

पठन और लेखन में बचपन से रुचि। जन्म से ही पूर्ण शैक्षिक पठन–पाठन युक्त परिवेश प्राप्त। बचपन से ही पिता (रामशंकर द्विवेदी) के साहित्यिक मित्रों विष्णुकांत शास्त्री, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, महादेवी वर्मा, विमल मित्र, सुनील गांगुली, अमर्त्य सेन जैसे साहित्य के पुरोधाओं का सानिध्य।

आपने लिखना कब से शुरू किया?

सूर्यबाला– बहुत छोटी थी। ज्यादातर रचनाकार बहुत छोटी उम्र में ही लिखना शुरू करते हैं, और विशेषकर हमारी पीढ़ी के। बहुत छोटी थी और यूँ ही शायद सारे साथी खेलकर चले गये थे। शाम वैसे भी थोड़ी उदास होती है। शाम के समय अकेली थी। यूँ लगा कि जैसे अन्दर से, बड़ा अच्छा–सा कुछ सूझ रहा है। कुछ अनुभूति हो रही है। बड़ी अच्छी–सी कविता बन गयी।

पहली रचना आपकी कविता थी! यदि स्मरण हो, तो यह भी बताइए कि कविता का शीर्षक क्या था?

सूर्यबाला– जी, कविता थी। 'बाँसुरी' शीर्षक कविता। कृष्ण की बाँसुरी और गोपियों की तन्मयता को लेकर, आप से आप लिखती गयी थी। जब लिख गयी तो मुझे लगा कि ये तो जो मैं माँ–पिता जी, इन लोगों के बीच जो छंद, कवित्त, शे'र–शायरी की बातें चलती हैं। कृष्ण की बात चलती है ,कृष्ण की कथा चलती है, कभी राम की कथा चलती है। जो भी बातें चलती हैं। कृष्ण की गोपियों की बात चली होगी कि कृष्ण ऐसे बाँसुरी बजाते थे, तो बच्चे के मन पर असर डाला होगा उसने अनजाने ही 'बाँसुरी' शीर्षक कविता लिख गयी। मैं आठ वर्ष की रही होऊँगी। स्कूल में नहीं पढ़ती थी।

आपकी पहली कविता किसी पत्र–पत्रिका में छपी थी क्या?

सूर्यबाला– हाँ, ये कविता भी जो मैंने आठ वर्ष की उम्र में रची, तो मैंने लिखी नहीं, मैंने ऊपर आकर बहनों से बतायी, तो बड़ी बहन ने कहा कि 'अरे! ये तो कविता है, तुमने कविता रची है। चलो–चलो लिखा जाये।' उन्होंने लिखा और उन्हीं ने लिखकर... ....। उस समय इलाहाबाद से प्रकाशित होती थी पत्रिका 'संगम', घर में सब पत्रिकायें आया करती थीं। 'संगम' में एक कॉलम होता था 'बाबाजी की क्यारी'.......तो उन्होंने वह उसमें भेज दी। पता–वता देख करके। उसके बाद हम लोग जौनपुर में थे। तब ये हुआ और फिर भूल गये। बहुत दिनों के बाद जब मेरा एडमिशन हुआ, बनारस के स्कूल में। मैं ऐसे ही किसी सहेली को बता रही थी कि मैंने ऐसे–ऐसे एक कविता लिखी, तो उनमें से किसी ने कहा कि– 'अरे! ये कविता तो पढ़ी है हमने 'संगम' में 'बाबा जी की क्यारी में'। तो मुझे लगा कि छपी होगी।

तो आपने उसको छपा कभी देखा नहीं?

सूर्यबाला– नहीं, मैंने छपी देखी नहीं। छोटे में कहाँ इतनी समझ रहती थी। कोई महत्वाकांक्षा ऐसी तो थी नहीं।

आप अपने बाल्यकाल के अनुभवों के बारे में, अपने कवि मन पर पड़े शुरूआती प्रभावों और निर्णायक प्रसंगों के बारे में कुछ बताएँगी?

सूर्यबाला– आपके सारे प्रश्न बड़े अच्छे हैं। लिखकर उत्तर देना चाहिए! हाँ, मैं ऐसे ही बता सकती हूँ, क्योंकि मेरी शुरूआत तो कविताओं से ही हुई थी। और मुझे लगता है कि घर में मेरे माता–पिता दोनों ही, पिता जी तो लिखते भी थे, ऐसे ही शौकिया लिखते थे। कभी–कभी बहुत अच्छा लिख जाते थे। और अपने साथ के साथियों के बीच में, संघकर्मियों के बीच में बैठकर, काम भी हो रहा है और बीच में कुछ लिखा तो सुनाते भी थे। अंदर कमरे से हम लोग सौंफ–इलाएची बगैरह तश्तरी में लेकर, उस जमाने में यही ज्यादा चलता था, ले जाते थे तो मैं सुनती रहती थी। तो इतना ही था। शायद ये कारण थे कि मैं लिख गयी कविता।

जी, तो आस–पास का जो वातावरण था, वह पूरी तरह से लेखन से परिपूर्ण था।

सूर्यबाला– हाँ! तो कविता कहीं आसमान से नहीं टपकती, बल्कि कहीं न कहीं अपने आसपास के अनुभवों और अनुभूतियों के बीच से आप से आप अंकुरित हो जाती है। पिता जी करते थे और माँ। और वो माता–पिता, दोनों, उनको अच्छी कवितायें पढ़ना, अच्छी कहानियाँ पढ़ना, उन्हें अच्छा लगता था। वो एक–दूसरे को सुनाते थे। नोंक–झोंक करते थे। घरों में हमारे अंत्याक्षरी हुआ करती थी। अंत्याक्षरी में, उस समय फिल्मी गाने तो होते नहीं थे, उस समय ये सब तुलसीदास के, कबीर के दोहे और ये चौपाइयाँ, एक से एक अच्छी मानस की चौपाइयाँ। कभी हम किसी के घर गये तो वहाँ सबसे अच्छा होता था कि दो–तीन पीढ़ियाँ मिलकर अंत्याक्षरी किया करती थीं। उनमें पूरे परिवार शामिल रहते थे। आज के समय में मुझे सबसे बड़ी शिकायत यही है कि अलग–अलग वर्गों में हम बँट जाते हैं। उम्र के अलग–अलग वर्गो में। तब, मैं देख रही थी कि मौसी, मौसा, मौसी के लड़के, हम लोग छोटे–छोटे, जिसको जो याद आता था, वह बोल रहा था। तो ऐसी अंत्याक्षरी होती थी। उससे भी कितनी चौपाइयाँ सब याद आ जाती थीं और मजा भी आ जाता था, इस तरह से। अच्छा, एक बात बता दूं कि बचपन में मुझे जो कविता, जितनी सुंदर तुक होती थी, वही मुझे अधिक प्रभावित करती थी। लेकिन वह भरती की तुक नहीं होनी चाहिए। जैसे उस जमाने में भी, बचपन में ही मुझे, मेरे अन्दर का आलोचक बहुत ही सख्त था। और वह अपने पिता की शैली में भी बहुत अच्छी, या बहुत सामान्य या बहुत ऐसी है, नहीं अच्छी लगी, इस तरह से अपने अंदर की, जो अपनी–दृष्टि होती थी, वह उसमें झाँकती थी और तुक में जैसे अगर उसी कवि की कोई कविता बहुत अच्छी लगती थी, तो मुझे लगता था कि वह कविता मैं भूल न जाऊँ। फिर कहाँ मिलेगी। जैसे, मैं कहीं किसी के घर गयी और कोई कविता मिल गयी, तो इतनी सुन्दर कविता पढ़ ली, क्योंकि रुचि थी, तो खो न जाये, तो मैं वहीं पर रट लिया करती थी और वह कवितायें मुझे अभी तक याद हैं।

अच्छा, तो याद कर लिया करती थीं, लिखती नहीं थीं!

सूर्यबाला– जो नहीं याद कर पाती थी तो वो झेंप–शर्म आती थी। जैसे कोई ये न कहे कि ये क्या कर रही है। हाँ, और कहीं–कहीं पर सबसे छुपाकर कहीं लिख भी लेती थी। जैसे उस जमाने में अब मैथिलीशरण गुप्त की कविता है न ...कि– *'हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होगें अभी/आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याये सभी।'* और 'अहो' या 'कहो' ये गुप्त जी की कविता में बहुत आता है। तो मुझे 'अहो' से जहाँ तुक जोड़ते हैं, उन्हें ये अच्छी लगती थी। बहुत छुटपन से ये था कि ये भरती का शब्द रखा गया है और जहाँ स्वाभाविक तुक गिर पड़ती थी, वह मुझे बहुत अच्छी लगती थी। जहाँ नैसर्गिक और स्वाभाविक तुकांत कविता होती थी, तो वह मुझे याद करने में आसान होती थी। अभी तक याद है। शायद यही कारण था, उस समय की मेरी कविता भी जो मेरी पहली कविता बनी है, उसमें भी तुक और पंक्तियों की मात्रा, छंद का अच्छा समन्वय है, कोशिश है, जब हो जाता था, तभी अच्छा लगता था।

आपके विचार से कविता का संबंध कवि के जीवन से कितना और किस प्रकार का है? क्या वही कविता महत्ता प्राप्त कर सकती है, जिसका सम्बन्ध कवि की जीवन–यात्रा से होता है?

सूर्यबाला– कवि उसके अतिरिक्त और लिखेगा ही क्या? कविता बहुत ज्यादा कवि के अंदर की अनुभूतियों से निकलती है। और कवि के अंदर, और कवि बना किससे है। कवि अपने संस्कार, अपने

ISSN : 2319-2178

बचपन की स्मृतियों का जो कोश व्यक्ति के पास होता है, और उसके संस्कार उसे जो दृष्टि देते हैं, बचपन सबसे बहुमूल्य होता है किसी के जीवन में। तो कविता, कवि से पृथक तो हो ही नहीं सकती है। आप तो स्वयं कविता लिखती हैं, आप बताइये कि कौन सी कविता आपके जीवन, आपके मन से पृथक हो सकती है। सहज उसमें आपका जीवन का ही, आपके चारों तरफ का जीवन, आपकी अनुभूति, आपकी दृष्टि, वही तो सांचा बनती है, आपकी कविता का। उससे अलग तो कुछ नहीं हो सकता। वही अभिव्यक्ति का माध्यम है।

जी, सहमत हूँ आपसे। सृजन के समय में चित्त की एकाग्रता या समाधि को आप कितना आवश्यक मानती हैं, और क्यों?

सूर्यबाला– सब कुछ उसी पर निर्भर करता है। अगर चित्त एकाग्र नहीं हो पाया तो रचना तो हो ही नहीं सकती। वह पूरी तरह असंभव है। अगर किसी तरह कोई हो तो वह सृजनात्मक लेखन, साहित्य नहीं होगा। और दूसरी ओर, वह गढ़ा, बलात् जबरदस्ती का गढ़ा हुआ होगा। संपूर्ण तादात्म्य, सम्पूर्ण एकाग्रता पहली शर्त है, किसी भी रचना की। चाहे वह कविता हो, कहानी हो, कुछ भी या कोई छोटी रचना हो, गद्य को छोड़कर।

क्या आप समाज के धरातल पर लिखती हैं या कल्पनाओं का ही सहारा लेती हैं?

सूर्यबाला– आप तो स्वयं लिखती हैं, आप स्वयं बताइए! आप किस पर लिखती हैं? हमारी रचनाओं में सब कुछ सच होता है। हर जगह हम होते हैं, हम प्रतिबिंबित होते हैं। लेकिन हम इतनी बहुरूपिए रूपों में हम, इतने चरित्रों में हम प्रतिबिंबित होते हैं कि हम स्वयं भी नहीं पहचान पाते, और पढ़ने वाले भी नहीं पहचान पाते। लेकिन होते हैं हर जगह हम ही, क्योंकि हम अपने चारों तरफ के वातावरण को, अपने चारों तरफ के जीवन को, समाज को, समाज की गतिविधिओं को जिस नजरिए से देखते हैं, जिस दृष्टि से देखते हैं,वही दृष्टि तो हमारी रचना में आती है, उससे अलग कुछ नहीं। दूसरे की दृष्टि से देखा हुआ तो हम लिख ही नहीं सकते। वो बीच में जैसे– हम कोई बड़ी चीज लिख रहे हैं, अगर है तो प्रतिवाद की तरह आएगा। लेकिन मूलतः एक तार, एक रेशमी धागा, किसी भी रचनाकार के अंतःजगत का एक रेशमी धागा, उसकी सब रचनाओं में होगा उपस्थित ही। किसी न किसी रूप में वह आएगा जरूर। मैं कितनी भी कोशिश करूँ कि मैं अपनी कहानी को, रचना को दूसरे तरफ ले जाऊँ, नहीं, वह चरित्र जिद करके बैठ जाएगा, हठ करके बैठेगा। वह कहानी का चरित्र अपनी मनवाकर रहेगा। अब वह सृजनात्मक साहित्य है।

'गौरा–गुनवन्ती' आपकी जो कहानी है, तो उसकी नायिका 'गौरा' का जीवन आपके जीवन के कितना निकटस्थ है?

सूर्यबाला– हमने कहा न! कि गौरा ही नहीं, मेरी हर रचना, आप जहाँ भी देखें, मेरे या मुझसे जुड़े बहुत से, हर चरित्र, जो चरित्र मुझसे बहुत जुड़े हुए होंगे। देखिए, हर रचनाकार के अंदर, हर पुरुष का, स्त्री का एक मॉडल बन जाता है। जैसे मैं स्त्री को इसी रूप में देखना चाहती हूँ। तो मेरे अन्दर एक स्त्री का, एक स्त्री निर्मित है मेरे अंदर। वह किसी के भी रूप

में, मतलब कि मेरी कहानियों में आती है। आप किन्नी को लीजिए, या तो, अब आप मुझे लगता है, लिखते हुए ये सब विचार तो हम करते नहीं हैं। वह तो अनायास आ जाते हैं। तो ये अगर मैं इसको स्थूल धरातल पर देखूँ अपने जीवन में घटित करके, तो न तो मैं ऐसी अनाथ रही। –नहीं–अनाथ रही, जैसे पिता नहीं रहे मेरे बहुत बचपन में, माँ रहीं। लेकिन गाँव से मेरा कोई रिश्ता नहीं रहा। मैं शहर की रही। जैसे गाँव गयी कहीं किसी संदर्भ में और आ गयी। तो सबसे बड़ी चीज होती है व्यक्ति के अंदर की अनुभूतियाँ। उसके अहसास, वही अहसास एक चरित्र गढ़ देते हैं, तो स्थूल रूप से मैंने किसी के घर, जैसे– गौरा ताई के घर में रह रही है, मैं

ISSN : 2319-2178

किसी के घर में नहीं रही। मैं अपनी माँ के ही पास रही। और जो कुछ गौरा के साथ घटा, ऐसा कुछ मेरे साथ नहीं घटा। अगर, मैं उसको अपने जीवन पर बहुत ज्यादा घटित कर देखती हूँ कि क्यों? कहाँ? कैसे? कहाँ से रेशा मिला है, क्योंकि है तो सच, मैं कभी गौरा को काल्पनिक नहीं मानूँगी। तो इस तरह से सच हो सकता है कि हमने बहुत संपन्न बचपन देखा, जब मेरे पिता थे, फिर हमने बहुत अभाव देखा, जब मेरे पिता नहीं थे और उस अभाव से जूझती हुई अपनी माँ को देखा। और उसके बाद एक वाक्य है इसमें कि सोने–रूपे से लसी रहेगी ये बेटी– *'अमवाँ बउर जस बउरौ, इमिलि जस झपसौ/बेटी पुरइन जस दहलेऊ, कँवल अस बिगसौ।'* (मेरी बेटी, तू वैसी ही सुखी और सम्पन्न हो, जैसे वसंत में बौरों से लदी अमराई, जैसे झोपों में लदी इमली, जैसे ताल में दह लेती कमलिनी, जैसे सुबह के विकसित कमल।) तो इसके विवाह की सम्पत्ति पर इसी वाक्य के किनारे,ये पूरी कहानी बुनी हुई है। क्योंकि सचमुच किसी ने मेरे लिए ही कहा था। जब मेरी माँ चिंतित हुई थीं। मेरे बड़े होने पर, और जैसे फड़फड़ाती है हर माँ कि सारी पासबुकें खाली हो गयीं, सब कुछ स्त्री कैसे कर पाएगी, कैसे विवाह होगा। हालांकि, बहुत ही अच्छे लोगों से उसी शहर से प्रस्ताव आते थे। लेकिन फिर वह लोग चले भी जाते थे कि हो पाया या नहीं। प्रस्ताव तो कितने ही आते, और बेटी का विवाह तो बहुत बड़ी, और वह भी अनाथ बेटी, और बिलकुल अभाव और बहुत बड़ा खानदान, कुटुंब! लेकिन बाहर वाले नहीं जान रहे कि अंदर क्या है, कोई पैसा नहीं है। मेरी बड़ी मौसी ने कभी, मैं कहीं जा रही थी, तो वह मेरी अम्मा से कह रही थीं कि– अरे! ये हमारी हीरे–मोती से लसी रहेगी। तुम देखना, तुम इसकी चिंता मत करो। मुझे लगा था कि इससे बड़ा मजाक बड़ी अम्मा नहीं कर सकती थीं, कि मेरे लिए कह रहीं हैं कि हीरे–मोती। हीरे–मोती तो बहुत बड़ी एक कल्पना हुआ करती थी। हीरे–मोती तो हमने देखे थोड़ी ही थे। मुझे लगा था कि इससे बड़ी निर्मम बात और क्या हो सकती है। पर ये आशीर्वाद था। वह मेरी माँ (अपनी छोटी बहन) को समझा रहीं थी कि इतनी गुणवती तेरी बेटी है। तुम बेकार परेशान होती हो, तुम देखना ये राजरानी होगी। भिखारी को भी दान दो, तो वह भी कहते हैं कि जाओ बिटिया राजरानी होगी। माँ को समझा रही थीं वह। उस समय भी रचनाकार तो थी ही मैं। बीज तो था ही अन्दर लेखन का। मैं 'आज' में, इंटरमीडिएट में थी– 19 वर्ष की उम्र में, लिखती थी। तो मन में सोचा। ये वाक्य मेरे मन में घर कर गया। सचमुच में कुछ समय पश्चात् इतने अच्छे घर से प्रस्ताव आया। अच्छा और भी एकाध लोग कहते थे कि 'अरे! हमें लगता है, कोई राजकुमार आएगा और इसको उठाकर ले जाएगा।' मुझे लगता था कि लिखती तो मैं हूँ, लेकिन मेरे आस–पास के लोग मुझे लेकर कैसी कल्पना करते हैं और सचमुच ही वह उन लोगों का आशीर्वाद था। वह कहते हैं कि शब्द पर सरस्वती बैठी रहती है कभी–कभी, तो वह साकार हुआ। उसके बाद मैंने बहुत दिनों के बाद लिखा। मैंने सोचा ही नहीं था– कहानी लिखने को। हुआ ऐसे कि मेरे पास एक पोस्टकार्ड आया, ये बड़ी माँ के न रहने का। मैं पति के साथ बहुत ही संपन्न, बहुत प्रसन्न, बहुत ही खुश, मेरे पति शिपिंग में इंजीनियर हैं। और मेरे पास ये पोस्टकार्ड आने पर, उस समय मुझे ये कहानी सूझती चली गयी। क्योंकि थोड़ा मैं रोयी थी। उनका आशीर्वाद मेरे लिए फलीभूत हुआ था। मेरे अंदर आशीर्वादों को लेकर, प्रार्थना को लेकर, जीवन आस्था को लेकर एक विश्वास रहा है। मेरी कहानियाँ कभी अनास्था पर नहीं समाप्त होतीं। दुःख पर समाप्त हो जायेंगी, अवसाद पर समाप्त हो जायेंगी, लेकिन अनास्था पर नहीं समाप्त होतीं।

आस्था में ही, कहीं न कहीं एक सकारात्मकता का बीज छिपा रहता है।

सूर्यबाला– मैं जितना ज्यादा कर्म पर विश्वास करती हूँ, उतना ज्यादा भाग्य पर भी विश्वास करती हूँ। मेरे जीवन में बहुत से भाग्य ले देकर फिर मिले हैं। तो मैं वह सब अपनी कापी पर लिखती रहती थी– *'सोने का संसार मिला, मिट्टी में मेरा।/इसमें भी भगवान, भेद कुछ होगा तेरा।।'* ये यशोधरा की पंक्तियाँ हैं। यशोधरा कहती है। इस तरह से मैंने देखा कि अरे! सचमुच सच हो गया। कोई न कोई भेद था। छठी में थी जब पिता नहीं रहे। और मैं पीएच.डी. कर रही थी, जब मेरा विवाह हुआ। इतने लंबे संघर्ष के दिनों से गुजरी थी मैं।

इस बीच आपकी शिक्षा प्रभावित नहीं हुई? यथावत् चलती रही!

सूर्यबाला– सब माँ की वजह से यथावत् चलता रहा।

इन दिनों आप क्या लिख–पढ़ रहीं हैं?

सूर्यबाला– अब तो उम्र के उस मुकाम पर हम पहुँच गये हैं कि बहुत सारी चीजें चलती रहती हैं। लेकिन मैं बहुत सारी चीजें नहीं चलाती हूँ। मेरी कहानी, उपन्यास और हास्य–व्यंग्य ये प्रमुखतः तीन विधायें रहीं हैं। और उसमें भी इधर मैंने अब, जैसे– पिछले 10–11 वर्षों से एक उपन्यास लिख रही थी, और बीच–बीच में कुछ छोटी–छोटी दूसरी चीजें आ गयीं। जैसे किसी ने कुछ माँगा तो वह भी समय लेते हैं। उपन्यास में और ...और..और.....विलम्ब होता गया। मैं कई बार अमेरिका गयी, मैंने प्रवासी भारतीयों की मानसिकता को लेकर उपन्यास लिखा है। 'वेणु की डायरी' और शीर्षक के लिए अभी तक बहुत निश्चित नहीं हूँ। कहीं कोई और 'कौन देश को वासी' जैसे उद्धव के लिए कहते हैं– 'निर्गुन कौन देश को वासी'। मैं उस उपन्यास का एक अध्याय लिख रही थी, और उसका ये शीर्षक दिया 'कौन देश को वासी'। जहाँ वह गया हुआ प्रवासी बेटा अपने बेटे से बात कर रहा है, वहाँ अमेरिका में पैदा हुए अपने बच्चे से, उस अध्याय का नाम दिया था 'कौन देश को वासी'। मुझे लगा कि ये शीर्षक तो पूरे उपन्यास का भी हो सकता है। अंत तक वह विदेश गया हुआ व्यक्ति, जो बीस साल पहले गया हुआ युवक, अंततः वह किस देश का है। क्या वह पूरा अमेरिकी नागरिकता ले लेने के बाद भी, क्या सचमुच वह मन से अमेरिकी है या वो भारतीय है। कितना भारतीय है? तो इस तरह से अभी वह नहीं हो पाया। राजकमल को गया है उपन्यास। 'कौन देश को वासी' उपन्यास का शीर्षक रखें या 'वेणु की डायरी'। इस उपन्यास के कई अंश 'अक्षर–पर्व' में और 'लमही' में, अभी 'विभूमि स्वर' में और उसके पहले 'संस्कृति' (NBT) नेशनल बुक ट्रस्ट, उसमें ऐसे बहुत सी पत्रिकाओं में इसके अंश छपे हैं।

आपकी इस लेखन यात्रा में आप अपने पति को कितना श्रेय और प्रेय देना चाहेंगी?

सूर्यबाला– अभी जल्दी में ही मेरे ऊपर ही मुंबई में एक कार्यक्रम रखा गया, और मेरे पति को भी बुलाया गया कि– 'सर भी आयेंगे।' तो वह भी मेरे साथ चले गये। तो वहाँ पूछा गया कि– 'सर, बताइए कि जिस प्रकार हर सफल पुरुष के पीछे एक महिला होती है, उसी प्रकार एक सफल महिला के पीछे एक पुरुष है।' तो मैं बहुत परेशान हो गयी कि ये तो हमेशा अंग्रेजी का ही प्रयोग करते रहे हैं, ये जिंदगी में पहली बार हिंदी का भाषण क्या देंगे। लेकिन उन्होंने बहुत छोटा–सा प्रसंग बोला कि– 'मैं कब से सुन रहा हूँ कि आप लोग मुझे श्रेय दे रहे हैं। मुझे कोई श्रेय मत दीजिए। क्योंकि इनके लिखने में मेरा कोई भी योगदान नहीं रहा। क्योंकि आज इतने वर्षों के जीवन में, 40–45 साल के हमारे साथ में एक दिन भी ऐसा नहीं हुआ है कि जब मैंने इनसे कहा हो कि– 'तुम लिखो, मैं चाय बनाता हूँ।' ऐसा नहीं हुआ। चाय इन्होंने ही बनायी है।' तो इतनी जोरदार तालियाँ बजीं। एक पुरुष इतने लोगों के सामने खड़ा होकर इतनी बड़ी स्थिति स्वीकार कर रहा है– 'कि चाय हमेशा इन्होंने ही बनायी है। मैंने कुछ नहीं किया है। इसलिए श्रेय इन्हीं को दीजिए। और आप जो पूछ रहे हैं कि हर सफल महिला के पीछे एक पुरुष है, पुरुष ने कुछ नहीं किया है। मुझे समय–समय से खाना–और दूसरी चीज अब आजकल इनका लिखना थोड़ा कम हो गया है, जो कम हो गया है, उसका एक कारण तो ये है कि आप लोगों ने इनको बहुत वरिष्ठ बना दिया है। बहुत महान बना दिया है। और दूसरा कारण तो इनके कम लिखने का ये है कि मैं अब रिटायर्ड हो गया हूँ। मैं अब घर में रहता हूँ।' इस पर भी बहुत तालियाँ बजीं। इतने लोगों के बीच में इनका ये कहना, मुझे वाकई बहुत अच्छा लगा।ये कम बड़ी उपलब्धि नहीं है। इससे मुझे बहुत संतोष मिला। आज अभी इनका फोन आया तो कहा– 'देखो तुम लिख नहीं रही हो!' मुझसे कहा– 'देखो इतनी बड़ी तपस्या हम और तुम दोनों कर रहे हैं। तुम को वहाँ भेजा है।' मैंने कहा– 'तुम्हीं ने भेजा है।' उन्होंने कहा– 'हाँ! भेजा है।' बोले कि– 'हाँ! इसीलिए तुम थोड़ा सा काम कर लो।' मैंने कहा– 'अच्छा ठीक है –ठीक है। ऐसा ही कहते रहो तो मैं उठ के जाती हूँ।' सबसे बड़ी चीज है आपस का विश्वास। और एक–दूसरे पर हम जो भरोसा करते हैं, उससे जीवन अच्छा है।

खरी–खरी

नीरज दइया

कागज के दुश्मन

कागज का आविष्कार चीन में हुआ। पंच काका का स्थाई आदेश है कि जब भी किसी का नाम लेने की बात हो, तो सावधानी रखो। मैं सोच रहा हूँ कि चीन का नाम लिया जाए, या कह दिया जाए कि कागज का आविष्कार भारत में हुआ। कोई वास्तव में पक्का यह नहीं जानता कि कागज का आविष्कार कहां हुआ। कहते हैं कि ऐसा लिखा हुआ मिलता है। लिखने से मानते हो तो मैंने लिख दिया– 'कागज का आविष्कार भारत में हुआ।' मैंने लिखा तो आप संदेह कर रहे हैं। इसलिए बेहतर पंच काका की बात है कि कागज की बात करते हुए मैं इसके आविष्कारक की बात गोल कर जाऊं। किसी ने कब कहा है कि नाम लो। मोर नाचा जंगल में किसने देखा, आपकी बात सही है। पर मैं तो पंच काका के स्थाई आदेश की पालना में बात का आरंभ ही बदल देता हूं। हमारे कविराज कह गए– *'हीमत कीमत होय, बिन हीमत कीमत नही। करे न आदर कोय, रद कागद ज्यूं राजिया।'* वैसे यह केवल राजिया के ही समझने की बात नहीं है। यह मेरी हिम्मत है कि कवि का नाम नहीं लिया, और उनकी पंक्तियों का उल्लेख कर दिया। लिखते समय पूरा मार्जिन हाथ में रखता हूँ। कागज और कलम हमारी है, तो फिर कंजूसी कैसी? वैसे कागद को चिट्ठी भी कहते हैं। और आजकल चिट्ठी आनी–जानी बंद–सी हो गई है। वह भी क्या दौर था– जब डाकिया डाक लाता था और हिंदी फिल्मों में *'डाकिया डाक लाया...'* जैसे गाने लिखे गए थे। खुशी की बात यह है कि अब डाक और डाकिया दोनों ही कंपलीटली फ्री हो गए हैं। लेटर–बॉक्स देखे तो बरसों–बरस हो गए हैं। जैसे वे हमारी दुनिया से गायब हो गए हो। अब यह शिकायत भी दूर हो गई– *"चिठिया हो तो हर कोई बांचे, भाग ना बांचे कोय.... ।"* भाग्य का भाग्योदय हो गया है। ई–मेल और संदेश भेजने के नए–नए तरीके ईजाद हो गए हैं। अब कागज के दुशमन तो गिने–चुने ही रहे हैं। अखबार और पत्र–पत्रिकाओं ने भी ई–संस्करण सुलभ करा दिए हैं। अब कौन कचरा इक्कठा करे। यह 'ई–युग' है बाबा। देखिए ए–बी–सी–डी चार युगों के बाद ये ई–युग आया है। इसमें समझदारी नहीं कि अखबार और पत्र–पत्रिकाओं के लिए इंतजार करो। सब कुछ नेट के ई में है भैया।

पंच काका कागज की दूसरी ही बात बता रहे हैं। गली में लड़ाई हो गई। बात बस इतनी थी कि दो हजार के नए नोट पर कोई नया फोटो क्यों नहीं छापा? भगतसिंह का छप जाता, नहीं तो बाबा साहेब का छाप देते। देखिए ना फिर से छाप दिया– गांधी बाबा का। वे इतने छप चुके हैं, तो अब किसी नए का नंबर आना चाहिए था। इसी बात पर बहस हुई। किसी ने सुझाव दिया कि जब इतने नोट हैं, तो फिर अलग–अलग नोटों पर अलग–अलग फोटो छाप कर सब की भावनाओं का सम्मान करना चाहिए। वैसे यह बहस और लड़ाई की बात नहीं थी। पर क्या करें हो गई कि गांधी बाबा को करवट बदलवाने के चक्कर में क्यों सबको लाइन में खड़ा करा दिया। नोट पर गांधी लेफ्ट से राइट हुए कि राइट से लेफ्ट, पर पूरे देशवासियों ने बैंकों की लेफ्ट–राइट जरूरी की। आजादी इसी का नाम है कि सब के अपने–अपने सुझाव और विचार हैं।

पंच काका ने उन्हें समझाया– ओछी राजनीति के चक्कर में आपने संबंध बर्बाद मत करो। सब के सब कागज और कलम ले आए और लिखने लगे। सबका कहना था कि हम प्रधानमंत्री जी कागद लिख सकते हैं। उन्होंने खुद कहा है– मुझे लिखो। गली के लोगों की कागज से दुश्मनी निकली। एक कागज लिखकर फाड़ते कि ठीक से लिखा नहीं गया। फिर दूसरा–तीसरा–चौथा। यह क्रम किसी नए कवि जैसे चलता रहा कि कविता लिखने के नाम पर बीसियों कागज बर्बाद करते हैं। अब इन्हें कौन समझाएं कि इस 'ई–युग' में कागज के दुश्मनों के लिए कोई जगह नहीं है। अब सब कुछ कागज–लेस हो रहा है।

संपर्क : **सी–107, वल्लभ गार्डन, पवनपुरी, बीकानेर– 334003 (राजस्थान)**

कृति–चर्चा

समय–समाज से टकराहट का परिणाम : 'कसक'

सुनील कुमार

कसक – डॉ. कृष्णा खत्री, मधुराक्षर प्रकाशन, फतेहपुर, द्वितीय संस्करण–2014, मूल्य– 180 रू.

वर्तमान समय में समस्याओं तथा व्यस्तताओं से मनुष्य मात्र मशीन बनकर रह गया है। बाजारीकरण, भौतिकतावादी मानसिकता, अंधाधुंध शहरीकरण की समस्याओं को अपनी कथाओं के माध्यम से व्याख्यायित करती है लेखिका डॉ. कृष्णा खत्री का कथा संग्रह 'कसक'। इस इस कथा संग्रह में मनुष्य के मनुष्य से दूर होने की गाथा है। आज के इंटरनेटयुगीन समय में मनुष्य का सबसे नजदीकी साथी इंटरनेट हो गया है। वह सारे अनुभव, भाव, विचार इंटरनेट से करता है। वह उसी का होकर रह गया है। इस समस्या को हिंदी के साहित्यकारों ने भयावह रूप में देखा है। लेखिका की सबसे बड़ी विषेषता यह है कि इन्होंने इस भयावह परिस्थिति में भी आशा और विश्वास को नहीं छोड़ा है। वह इस परिस्थिति में भी राह ढूँढ़ लेती हैं। वह कथा को इंटरनेट तथा भौतिकता के समानांतर चलने वाली विधा बताती हुई लिखती हैं–*''जब हम इंटरनेट पर चैट करते हैं तब भी किसी न किसी कहानी को लिखते–पढ़ते हैं। ये छोटे–बड़े प्रसंग, हमारा प्रेम, हमारा गुस्सा, हमारा उत्साह या फिर हमारी आवश्यकता, प्रेरणा तथा हर बातचीत का सिरा खुद–ब–खुद कहानी बना लेता है। हम कहानी लिखते–पढ़ते, और सुनते हैं लेकिन इस तथ्य से अनभिज्ञ रहते हैं।''*('कसक' की भूमिका से)। लेखिका समय से लोहा लेने की क्षमता रखती हैं।

इस कथा संग्रह में कुल 21 कहानियाँ हैं। इन कहानियों में समाज के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया गया है। मानव जीवन के नानान पक्षों तथा भावों का सम्मिश्रण है यह कथा संग्रह। नगर के साथ–साथ ग्रामीण परिवेश की भी झलक इस कथा संग्रह में देखने को मिलता है। इसमें व्याख्यायित भावों तथा पक्षों पर प्रकाश डालते हुए बृजेन्द्र अग्निहोत्री ने लिखा है–*'कृष्णा जी की कहानियां समसामयिक जीवन एवं परिवेश की विसंगतियों को पूर्णतः अभिव्यक्ति देने में सफल कही जा सकती हैं। कृष्णा जी ने अपनी कहानियों में यह व्यक्त करने का प्रयास किया है कि केवल सुख पाना ही जीवन का उद्‌देश्य नहीं है, अपितु सार्थक जीवन जीना इसका उद्‌देश्य है।......इन कहानियों में ग्रामीण, कस्बाई जीवन के साथ नगरीय जीवन भी अभिव्यक्त हुआ है। वास्तव में ये कहानियां जीवन के यथार्थ से जुड़ने–जोड़ने का प्रयास करती हैं। इनमें मानव की उत्तेजना, खीझ, उत्साह, प्रेम, आवश्यकता, आक्रोश, निराशा, कुण्ठा, असंतोष सब देखा जा सकता है।'*

साहित्य के आदिकाल से ही स्त्री लेखिकाओं की उपस्थिति न के बराबर है। भक्तिकाल से एवं उसके बाद साहित्य में स्त्री की उपस्थिति का पता चलता है। यह समाज के लिए शुभ संकेत है। पराधीनता तथा बंधनों को तोड़कर वह आगे बढ़ रही है। नामवर सिंह कहते हैं– *'इतिहास का मूक नायक अब मूक नहीं रह गया है।'* अब उसके मुंह में भी जुबान हो गई है। वह अपनी चिंता खुद कर सकता है। यही वह कारण है कि स्त्रियां आज अपने अधिकार के लिए सड़क पर उतर रही हैं। अर्थात साहित्य में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही लेखिकाओं में डॉ. खत्री भी प्रमुख रूप से गिनी जाती हैं। समकालीन हिंदी कहानियों में दलित–लेखन की तरह स्त्री–लेखन भी तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है। महिला कथाकारों ने जितनी सुगमता, सूक्षता और संवेदना से नारी के उलझनों, विवशताओं और जटिलताओं को लिखा है उतना पुरुष कथाकारों ने नहीं लिखा। नारी अपने वर्ग के संघर्ष को स्वयं व्यक्त करती है। लेखिका इस बात को प्रस्तुत कथा संग्रह में बेबाक तरीके से स्पष्ट करती हैं। 'मैं अपनी बेटी को जमीन दूंगी' कहानी में लेखिका ने एक औरत के प्रति हुए दोहरे व्यवहार को तथा उसके अंदर की टीस को व्यक्त किया है– 'एकाएक बेटी ने मां का हाथ अपने हाथ में थामते हुए पूछा– *''मां तुमने... तुमने मुझे हर बार दोयम दर्जे पर क्यों रखा? अपना पहला प्यार अपनी पहली चाह, मेरा पहला हक क्यों नहीं दिया? क्या मैं लड़की हूँ इसलिए...। क्या तुमहारी मां ने तुम्हारे साथ 'ऐसा' ही किया था? यदि हाँ तो.....तो तुमने मेरे साथ ऐसा कर के 'अपने साथ' ही तो ऐसा किया है। खुद को ही छला है। मां तुम एक औरत होकर भी, अपनी बेटी के रूप में दूसरी औरत की अस्मिता के अस्तित्वबोध को जमीन न दे सकी। मगर मैं अपनी बेटी को जमीन दूंगी।''*

भारत के पुनरुत्थान के दौर में कुछ ऐसे प्रभावशाली व्यक्तित्व हुए जिन्होंने नारी संबंधी कुप्रथाओं का विरोध किया। स्त्री शिक्षा की मुहिम छेड़ी गई जिससे नारी साहित्य जगत में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने लगी। उपन्यास, कहानी, निबंध, कविता जैसे विविध विधाओं में नारी मन की संवेदनाओं को स्थान मिला। आज स्त्रियों का रचना संसार काफी समृद्ध हो रहा है। डॉ. खत्री जैसी लेखिकाओं के माध्यम से यह मिथक टूट रहा है कि महिला महत्वपूर्ण लेखन नहीं कर सकती हैं। 'कसक' कहानी संग्रह स्त्री के कथा–लेखन में मील का पत्थर साबित होगी। जीवन के सभी स्तरों पर खरा उतरने वाले इस संग्रह पर अपनी राय देते हुए चन्द्रकान्त डी. खत्री ने लिखा है– *'कहानी संग्रह 'कसक' हिंदी साहित्य की अनमोल धरोहर है। आम जनजीवन से जुड़ी यह कहानियां जिंदगी की जमीन से जन्मी हकीकत को ब्यान करती है। हर कहानी पाठक को अपनी लगती है, उसे लगता है– अरे यह तो उसी की कहानी है। उसके साथ यही सब तो हुआ है, होता है। बस यही लगना ही कहानी संग्रह 'कसक' को कालजयी बनाता है।'* इस कहानी संग्रह की प्रत्येक कहानी का अपना एक अलग संसार है जो आम आदमी की जिंदगी से जुड़ा हुआ है। पाठक के मानस–पटल पर यह कहानियां एक अलग छाप छोड़ती हैं। वह इसमें अपनी जिंदगी को आत्मसात कर लेता है। पाठक को भाव के धरातल पर बांध लेने का काम करती हैं– यह कहानियां। साधारणीकरण के सिद्धांत का इस कहानी संग्रह में पुट देखने को मिलता है। पाठक इन कहानियों को पढ़कर उसमें अपने आप को देखता है, महसूस करता है, उसे जी लेना चाहता है। अर्थात् उसका साधारणीकरण हो जाता है। वर्तमान समय के कम ही लेखकों की कहाानियों में साधारणीकरण के सिद्धांत दिखाई पड़ता है। नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र की परंपरा निर्वाह कर रही लेखिकाओं में डॉ. खत्री का नाम महत्वपूर्ण है।

वर्तमान समय में बाजार ने संसार पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया है। समाज में एकल परिवार की परिकल्पना आ गई है। मनुष्य को मनुष्य से अलग कर देने का भयावह चक्रांत आरंभ हो गया है। भौतिकतावाद और भूमण्डलीकरण ने मनुष्य को नितांत अकेला कर दिया है। इस पर भागवत रावत ने लिखा है कि– *'दुनिया जब से बेहद पास आ गयी/पास–पास की सारी चीजें दूर हो गयीं।'* इस व्यवस्था के कारण मनुष्य में पढ़ने लिखने की क्षमता में काफी परिवर्तन आया है। लेखिका पुस्तक के आरंभ में ही स्पष्ट करती हुई लिखती हैं– *'टेलीविजन की घुसपैठ ने सबको हवा कर दिया। फिर आये कम्प्यूटर महोदय, उन्होंने तो सबको अपने कब्जे में कर लिया। यहां तक कि पुस्तकों को भी परे धकेल दिया, सब–कुछ छोटी सी सीडी में समा गया, आज की किताबों ने भी इलेक्ट्रॉनिक रूप ले लिया है। इस तरह धीरे–धीरे बदलते स्वरूप में पुस्तकें पढ़ने की आदत ही छूट गई है।'* इस कहानी संग्रह में स्त्री मुक्ति के अलावा प्रेम के रहस्यों का उद्घाटन किया गया है। बाल मनोविज्ञान पर आधारित कथा ने पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास किया है। अभाव तथा विपन्नता जैसी समस्याओं को भी कथा–संग्रह में स्थान दिया गया है। समय से टकराहट का परिणाम है कथा संग्रह 'कसक', जिसमें समय तथा व्यवस्था से मुठभेड़ करने की क्षमता है।

संपर्क : **शोधार्थी, हिंदी विभाग, नेहू, शिलांग–22**

शोध–लेख

हिन्दी साहित्येतिहास : पुनर्लेखन की आवश्यकता

डॉ. हितेन्द्र कुमार मिश्र

इतिहास मूलतः समाज विज्ञान का विषय है। इसका कोशगत अर्थ 'व्यक्ति, समाज या देश से सम्बन्धित तथ्यात्मक घटनाओं का कालक्रमानुसार विवेचन है।'[1] यह संस्कृत के मूल शब्द 'इति' से निष्पन्न संज्ञा, पुर्ल्लिग शब्द है। इसका सम्बन्ध मूलतः अतीत से होता है। अतीत अर्थात् जो बीत चुका हो। बीते हुए समय का सन्दर्भ ही इतिहास है। 'इतिहास वास्तव में ऐतिहासिक स्रोतों, अभिलेखों, संस्मरणों में वर्णित घटनाओं का न तो विवरण है और न तो अतीत तथा वर्तमान के बीच अनवरत परिसंवाद। अधिकांश घटनाएं मनुष्य की कृतियॉ होती हैं। उनके पीछे मानवीय मस्तिष्क की भूमिका निर्णायक होती है। इतिहासकार द्वारा इन घटनाओं के अंतस्तल में प्रवेश कर क्रिया–कलापों के परिवेश में मानवीय मस्तिष्क को समझना ही इतिहास है।'[2] अतीत में सम्बन्धित जाति नश्ल का सम्पूर्ण स्वरूप क्या था ? यह उसका इतिहास ही बता सकता है।

इतिहास को जानना अपने आप को जानना है, इसलिए उसमें दृष्टि का होना सबसे आवश्यक होता है। इतिहास की तरह साहित्य का सम्बन्ध भी समाज से होता है। समाज की प्रत्येक गतिविधि का सीधा प्रभाव साहित्य पर पड़ता है। साहित्य का इतिहास दर्शन विषय के अध्येता आचार्य नलिन विलोचन शर्मा का मानना है कि 'साहित्य के इतिहास का निर्माण ऐतिहासिक बोध, राष्ट्रीय अथवा भाषागत विशेषताओं का विचार, फिर पार्थक्य में अन्तर्निहित सम्पृक्तता का अभिज्ञान तथा युग की प्रवृतियों और विकास की चेतना जब प्रलतत्वानुसंधान वृत्ति से समन्वित होते हैं और शताब्दियों से एकत्र होती हुई सामग्री का वे अपने युग की इदात्तता को दृष्टि से उपयोग करतें हैं तब साहित्येतिहास का निर्माण होता है।' इसी आलोक में हिन्दी साहित्य के इतिहास पर भी विचार किया जाना चाहिए। किन्तु, विविध हिन्दी आंदोलनों एवं पुरस्कार राजनीति के हलचल में हिन्दी के आधिकारिक विद्वानों ने बड़े–बड़े सृजनात्मक कार्य तो बहुत किए लेकिन हिन्दी साहित्येतिहास लेखन के क्षेत्र में कोई अपेक्षाकृत उल्लेखनीय कार्य दिखाई नहीं देता बल्कि अपने पूर्ववर्ती विद्वानों की मान्यताओं का पुनराख्यान ही प्रस्तुत किया। आज साहित्य और उसके इतिहास को परखने की नई दृष्टि का विकास हुआ है, तब यह आवश्यकता और भी जोर पकड़ती जा रही है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास को भी नए ढंग से देखा और परखा जाय।

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे दशक से प्रारम्भ होती है जब 1839 ई. में में हिन्दी एवं उर्दू के प्रमुख कवियों के क्रमिक विवरण का प्रथम भाग 'इस्त्वायर द ला लितरेत्युर ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी' नाम से फ्रेंच भाषा में गार्सा द तासी ने प्रकाशित किया। इस महत्वपूर्ण ग्रंथ का दूसरा भाग 1847 ई. में प्रकाशित हुआ। इस परम्परा को आगे बढ़ाने में शिवसिंह सेंगर, जार्ज अब्राह्म ग्रियर्सन एवं मिश्रबंधुओं के योगदान से हम सभी परिचित हैं। हिन्दी साहित्य का प्रथम तार्किक एवं विश्लेषणपरक इतिहास लिखने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को जाता है। शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास का आधार जनता की चित्तवृत्तियों को माना और उसमें होने वाले परिवर्तनों लक्ष्य करते हुए हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन किया। किन्तु, कालान्तर में सम्मुख आने वाले अनेक तथ्यपरक सूचनाओं ने शुक्ल जी के हिन्दी साहित्य के इतिहास में कतिपय संशोधनों की अपेक्षा की ओर संकेत किए। हिन्दी साहित्य के इतिहास को समाज एवं उसके सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में कुछ हद तक परखने का प्रयास सर्वप्रथम आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने किया। द्विवेदी जी ने न केवल जनता के साहित्य को प्रस्तुत किया अपितु नए साहित्यिक प्रतिमानों की भी स्थापना की और इसी कमी के कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास हिन्दी साहित्य की भूमिका होकर रह गया और आचार्य द्विवेदी की हिन्दी साहित्य की भूमिका इतिहास के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

जिस समय आचार्य द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य की भूमिका नाम से हिन्दी साहित्य का सामाजिक, सांस्कृतिक इतिहास लिखा, उस समय की अपनी सीमाएं थी और लगभग इसी समय से एक बड़ी कतार हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास से लेकर उसके वैज्ञानिक इतिहास तक लिखने लगीं और आज तक अनेक नए–नए नामों से हिन्दी साहित्य के अनेक इतिहास लिखे जा चुके हैं। इन नए अनुसंधानपरक साहित्य इतिहासों के माध्यम से साहित्य से सम्बन्धित ढ़ेर सारी सामग्री प्रकाश में आ चुकी है। आज हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में विद्या संस्थानों द्वारा अनेक मौलिक एवं श्रेष्ठ अनुसंधान कार्य भी तेजी से हुए हैं। इन अनुसंधान कार्यों से अनेक प्राचीन ग्रंथ प्रकाश में आये है एवं उन पर नए ढ़ग से चिंतन भी हो रहे हैं। इन कारणों से बहुत से साहित्यिक कृतियों का पूर्व का स्थान भी बदल गया है। हिन्दी साहित्य के पहले इतिहास से आज तक समय एवं समाज के रहन–सहन एवं चिंतन के क्षेत्र में काफी बदलाव हुआ है। इन परिवर्तनों के कारण हिन्दी साहित्य का आज का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के इतिहास से काफी अलग हट चुका है। अतः इन सब को समेटकर आज हिन्दी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन की महती आवश्यकता दिखाई देती है। सम्भवतः इसी पुनीत कार्य के माध्यम से आचार्य शुक्ल एवं आचार्य द्विवेदी के इतिहास दृष्टि को सुसंगत ढ़ंग से विकसित किया जा सकता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता का बोध आज कोई नई अकस्मात हुई यांत्रिक क्रिया नहीं है, इसकी आवश्यकता को हमारे विद्वान बहुत दिनों से महसूस करते रहे हैं। इस विषय पर बहस की शुरूआत हिन्दी के शीर्षस्थ आलोचक डॉ. नामवर सिंह ने आलोचना के अक्टूबर, 1952 में ही की है और बाद में अनेक विद्वानों एवं शोधकर्ताओं ने इसकी आवश्यकता को महसूस किया है। आज का समय विज्ञान और तकनीकि का समय है। विचारधारा के स्तर पर अनेक प्रकार की विचारधाराएं अपनी प्रभावी भूमिका में दिखाई दे रही हैं। हिन्दी की अनेक रचनाओं एवं उनके रचनाकारों के प्रति धारणाओं में परिवर्तन हो रहे हैं। ऐसे में हिन्दी साहित्य के इतिहास पर सम्यक दृष्टि से पुनर्विचार की आवश्यकता है।आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को अपना प्रिय आलोचक मानने वाले मार्क्सवादी आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने भी हिन्दी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए शुक्ल जी की अनेक स्थापनाओं एवं मान्यताओं से असहमति प्रकट की है। यहॉ तक कि वे आचार्य शुक्ल को लक्ष्य करते हुए भक्तिकाल के सन्दर्भ में लिखते हैं कि 'जो लोग इस्लाम को हिन्दू धर्म की टक्कर में आशा निराशा का स्रोत ढूॅढते हैं वे उस समय के साहित्यिक आन्दोलनों के सामाजिक आधार का सही पता नहीं लगा सकते।' यह सत्य है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्येतिहास लेखन की दिशा में रामविलास शर्मा जी ने महत्वपूर्ण कार्य किया है लेकिन यदि उनके सम्पूर्ण लेखन पर विचार किया जाय तो वह भी नामवरी अंदाज में हिन्दी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन की मांग करता है।

साहित्य और समाज का अभेद सम्बन्ध होता है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। साहित्य वस्तुतः समाज के वैचारिक द्वंद्व की उपज होता है, जिसमें किसी न किसी रूप में उस समाज की भूमिका आधार रूप में होती है। समाज से इतर साहित्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती है और न ही साहित्य से इतर समाज की। इसलिए साहित्य के विकास में समाज को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। समाज और उसकी विचारधारा साहित्य को दूर तक प्रभावित करती है। साहित्य के इतिहास निर्धारण में समाज के वैचारिकी की भूमिका एक अनिवार्य और उसके आवश्यक पहलू होते हैं। साहित्य अपने समय का सामाजिक सन्दर्भ होता है। किन सामाजिक परिस्थितियों में उसकी उत्पत्ति हुई ? कब हुई ? इन तथ्यों का शोध साहित्य के इतिहास का प्रमुख धर्म होता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा में यह प्रश्न अधिकांशतः अनुत्तरित ही है।

इतिहास लेखन का अपना स्वतंत्र दर्शन होता है। इतिहास दर्शन से आशय उसके अवधारणात्मक स्वरूप से है। इस साहित्य के इतिहास दर्शन के क्षेत्र में आचार्य नलिन विलोचन शर्मा एवं डॉ. सुमन राजे ने बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन हेतु यह कार्य मार्गदर्शक कार्य है। अन्य अवधारणाओं की भॉति इतिहास दर्शन के क्षेत्र में भी प्रायः दो प्रकार की अवधारणाएं भारतीय एवं पाश्चात्य प्रचलित रहीं है। वामपंथी विचारधारा इतिहास लेखन में भी द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की दृष्टि को सर्वोपरि महत्व देती है। कतिपय लेखकों द्वारा समझ के अंतर के कारण इसका भी सम्यक निर्वाह दिखाई नहीं देता। साहित्य के इतिहास लेखन की इस दृष्टि की दो प्रमुख विशेषताएं प्राप्त होती हैं–

1. साहित्य की विकासमान प्रक्रिया को सतत एवं परिवर्तनशील रूप में देखना। और,
2. विभिन्न वस्तुओं, घटनाओं और विचारों की एकात्मकता एवं वैविध्य की सही पहचान करना।

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों का एक समूह इसकी भारतीय अवधारणा पर अवलम्बित था। इस अवधारणा में भी अनेक कमियॉ इन लेखकों द्वारा प्रस्तुत कर दी गईं। लेखकों द्वारा की गईं ऐसी चूकें ही हिन्दी साहित्येतिहास के पुनर्लेखन की मांग करती हैं।

हिन्दी साहित्य के प्रथम इतिहास से लेकर आज तक के प्रकाशित प्रमुख इतिहास ग्रंथों पर अगर सम्यक ढ़ंग से विचार किया जाय तो इस क्षेत्र में हुई प्रगति का अंदाजा स्वतः ही चल जाता है। तासी का इतिहास ग्रंथ हिन्दी एवं उर्दू के कवियों का वृत्तसंग्रह है। इसका महत्व सिर्फ इतना ही है कि यह हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास है। इस पुस्तक में कविवृत्तों का संग्रह भी कालक्रम के अनुसार न होकर वर्णक्रम के अनुसार है। शिवसिंह सेंगर का ग्रंथ शिवसिंह सरोज भी कुछ इसीप्रकार का ग्रंथ है। एक हजार कवियों वृत्तसंग्रह वाले इस ग्रंथ में भी इतिहास की विशेषताएं दिखाई नहीं देती। काल विभाजन एवं नामकरण में बहुत तार्किकता इस ग्रंथ में दिखाई नहीं देती। हिन्दी साहित्य का अंग्रेजी में इतिहास प्रस्तुत करने वाले

ग्रियर्सन साहब ने भी कोई गम्भीर प्रयास नहीं किया। उन्होने अधिकांशतः अपने पूर्व के ग्रंथों को ही आधार बनाकर इतिहास लिख डाला। मिश्रबंधुओं का विनोद भी इस परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। मिश्रबंधुओं को इतिहास ग्रंथ लिखने का बहुत मोह नहीं था, ऐसे संकेत उन्होने अनेक अवसरों पर दिए हैं। इसलिए उसमें अपेक्षित सावधानी के स्थान पर विनोद अधिक प्रस्तुत हुआ है।

हिन्दी साहित्य का प्रथम तार्किक एवं सुब्यवस्थित इतिहास लिखने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को जाता है। आचार्य शुक्ल ने जनता की चित्तवृत्तियों को इतिहास चिंतन के केन्द्र में रखा। शुक्ल जी के इतिहास लेखन में भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टियों का संतुलित प्रयोग दिखाई देता है। दृष्टि का सम्यक प्रयोग करने के बावजूद उसमें कुछ कमियॉ भी दिखाई देतीं है। 'अनुपात की दृष्टि से उनका स्वल्पांश ही प्रवृत्ति–निरूपण–परक है, अधिकांश विवरण प्रधान ही है, और वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि इसके लिए उनका मुख्य आधार वह विनोद है, जिसके लेखक मिश्रबंधुओं पर उन्होने अनावश्यक रूप से कटु व्यंग्य भी किए हैं।'[3] शुक्ल जी के इतिहास की कमियों की मीमांसा करते हुए हिन्दी साहित्य की भूमिका नाम से साहित्य का इतिहास आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रस्तुत किया। आचार्य द्विवेदी ने सम्पूर्ण भारतीय चिंताधारा को अपने इतिहास का आधार माना। तासी के इतिहास ग्रंथ से लेकर आज तक के इतिहास ग्रंथों पर अगर ध्यान दिया जाय तो मौलिकता के नाम पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ही ऐसे मिलेंगे जो सम्पूर्ण हिन्दी वाङमय के इतिहास को अपने युग की सीमाओं के बावजूद स्थापित कर सके। द्विवेदी जी ने अपने ग्रहण और त्याग की संतुलित विवेक दृष्टि की कसौटी पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की स्थापनाओं को स्वीकार/अस्वीकार किया है। सामंती समाज को अभिव्यंजित करने वाली प्रशस्तिगाान साहित्य में द्विवेदी जी की उतनी दिलचस्पी नहीं है, जितनी सामंती समाज से अलग बहुसंख्यक समाज को प्रतिबिम्बित करने वाले साहित्य में। चाहे वह आदिकाल में सिद्धों–नाथों की कि बानी हों या जैन कवियों की धार्मिक रचनाएं अथवा मध्यकालीन भक्तिकाव्य के उद्भव का प्रश्न। इन सब में बहुसंख्यक समाज को प्रतिबिम्बित करने अथवा परम्परा पर इतना जोर हो गया है कि दूसरी महत्वपूर्ण चीजें छूट सी गई हैं। कहीं कहीं तो परम्परा और जातीय चेतना के विकास पर ध्यान इतना अधिक केन्द्रित हो गया है कि साहित्येतिहास की मूल दृष्टि पीछे हो गई है। किन्तु, इन सब के बावजूद साहित्य के बहाने भारत की सांस्कृतिक विरासत एवं उसकी समाजशास्त्रीय विवेचना में आचार्य द्विवेदी का कोई जोड़ दिखाई नहीं देता। हिन्दी साहित्य के समाजशास्त्रीय और सांस्कृतिक इतिहास लेखन का श्रेय आचार्य द्विवेदी को ही जाता है। काल विभाजन में शुक्ल जी की दृष्टि अत्यंत तार्किक है। इस तार्किकता का ही कारण है कि शुक्ल जी इतिहास दृष्टि के आलोचक भी उन्ही के द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन को स्वीकार करते हैं। डॉ. नामवर सिंह का कथन यहॉ दृष्टव्य है कि 'उन्होने प्रवाह की गति का उत्थान पतन भी दिखया है और लोक संग्रह की कसौटी पर इतिहास के समाजोन्मुख एवं समाज के परांगमुख युगों में अन्तर भी बताया है।' यद्यपि द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास को हिन्दी साहित्य की भूमिका शीर्षक से लिखा किन्तु, उनका यह ग्रंथ हिन्दी साहित्य की परम्परा और समाज को समझने के लिए सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ के रूप में स्वीकृत होने के बावजूद कतिपय असंगतियों से दूर नहीं हो सका। द्विवेदी जी आर्य और अनार्य मूलक धारणा को इस रूप में देखा जा सकता है। और जिस प्रकार आचार्य शुक्ल का इतिहास मिश्रबंधुओं के इतिहास से प्रभावित दिखाई देता है उसी प्रकार आचार्य द्विवेदी का इतिहास शुक्ल जी के इतिहास से। यद्यपि दोनो इतिहास लेखक विद्वानों की वैचारिक दृष्टि में पर्याप्त भिन्नता थी किंतु अनेक विन्दुओं पर दोनो में समानता भी थी।

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में आदिकालीन रचनाकारों का पुनर्मूल्यांकन, भक्तिकाल की अन्तर्वर्ती धाराओं के नामकरण, रीतिकालीन साहित्य का परिस्थिति सापेक्ष मूल्यांकन, आधुनिककाल की अन्तहीन आधुनिकता सहित अनेकों प्रश्न साहित्येतिहास के पुनर्लेखन की मांग करते हैं। एक और प्रमुख बात इस सन्दर्भ में कहना यह है कि भारत के प्रांतीय भाषा साहित्य को हिन्दी भाषा साहित्य के साथ जोड़कर देखने का प्रयास नहीं हुआ है या बाद में थोड़ा बहुत हुआ भी है तो एक निश्चित विचारधारा से बँधकर। भारत की अधिकांश भाषाओं में पारिवारिक साम्य भी है इसलिए हिन्दी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन का कार्य और भी आवश्यक प्रतीत होता है। हिन्दी साहित्येतिहास के पुनर्लेखन की मांग करने के पीछे अनेक ऐसे विन्दु हैं जो इस लेख से छूट से गये हैं। उन सभी विन्दुओं को एक साथ जोड़कर देखने की जरूरत है। इन सभी एवं जो अन्य छूटे हुए विन्दुओं को लेकर हिन्दी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन की महती आवश्यकता है। नए सिरे से हिन्दी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता को अलग–अलग लेखों एवं शोधकार्यों के माध्यम से डॉ. नामवर सिंह, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. शिवकुमार मिश्र एवं डॉ. मैनेजर पाण्डेय जैसे विद्वान आलोचकों के अतिरिक्त अनेक शोधकर्त्ताओं ने भी महसूस किया है किन्तु, अब तक इस दिशा में कोई ठोस कार्य नहीं हुआ है। इसलिए इस ओर ध्याान दिए जाने की आवश्यकता है।

संदर्भ :

1. वर्धा हिन्दी शब्दकोश– पृ. 148
2- इतिहास दर्शन– डॉ. झारखण्डे चौबे, पृ. 01
3- साहित्य का इतिहास दर्शन– श्री नलिन विलोचन शर्मा, पृ. 89

संपर्क : हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग – 793022

शोध–लेख

स्वाधीन भारत के परिप्रेक्ष्य में महिलाओं की रचनात्मक क्रांतिकारी भूमिका

डॉ. ममता गंगवार

नारी करुणा प्रेम, वात्सल्य और श्रृंगार के साथ–साथ वह मानव जीवन के सतत् संघर्ष के आदर्श और प्रेरणा स्रोत भी रही है। आदर्शों तथा यथार्थ के प्रति रूपों में नारी ने प्रत्येक युग में अपनी अक्षय ऊर्जा से हर किसी में चिरंतन जिजीविषा का संचार किया है, लेकिन पुरुषवादी समाज ने कभी भी उसे दासी या भोग्या से अधिक कुछ नहीं माना है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्तें रमन्ते तत्रदेवताः' का आदर्श बघारने वाला देश है जहाँ के पुरुषों नें नारी को यदि देवी माना तो उसे मन्दिरों में प्रतिष्ठित कर दिया और स्त्री माना तो उसे चरण सेविका बनाकर तिल–तिल मरने के लिए मजबूर कर दिया है। 'नारीवाद का स्वरूप सरल, इकहरा नहीं जटिल संरचना में है। हमारी पारिवारिक संरचना इतनी चक्करदार है कि नारी हाँ या न में प्रायः निर्णय नहीं ले पाती है।[1]

आज जब नारी जागरूक होकर परिवार और समाज में अपने ऊपर होने वाले अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाती है तो उसकी पुकार को पश्चिम के नारी मुक्त आन्दोलन से जोड़कर उपहास का पात्र बना दिया जाता है। जब पढ़ लिखकर उसकी समझ एवं संवेदना का विस्तार हुआ तब–तब उसके आंसू आग बनकर अन्याय के खिलाफ घर की चाहर दीवारी के बाहर बरसने लगते हैं और तब वह अपने विस्तार को तलाशने लगती और आसमान की ऊँचाईयों को छूना चाहती है। हमारे यहाँ की स्त्री शताब्दियों से अपने अधिकारों से वंचित चली आ रही है अनेक राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों ने उसकी अवस्था में परिवर्तन करते–करते अधोगति तक पहुँचा दिया है।[2]

'श्रृंखला की कड़ियाँ' पुस्तक में 'नारीत्व का अभिशाप' शीर्षक में महादेवी वर्मा लिखती है कि– *''चाहे हिन्दू नारी के गौरवगाथा से आकाश गूँज रहा हो, चाहे उसके पतन से पाताल काँप उठा हो परन्तु उसके लिए न सावन सूखे न भादों हरे वाली कहावत ही चारितार्थ होती रही है उसे अपने हिमालय को लजा देने वाले उत्कर्ष या समुद्र तक की गहराई से स्पर्द्धा करने वाले अपकर्ष दोनों का इतिहास आंसुओं से लिखना पड़ा है और संभव है कि भविष्य में भी लिखना पढ़े। प्राचीन से प्राचीनतम काल में जब उसने त्याग, संयम, तथा आत्मदान की आग में अपना सारा व्यक्तित्व सारी सजीवता और मनुष्य स्वभावोचित इच्छाएँ तिल–तिल गलाकर उन्हें कठोर आदर्श के साँचे में ढालकर एक देवता की मूर्ति गढ़ डाली। तब भी कन्या संसार विस्मित हुआ या मनुष्यता कातर हुई? क्या नारी के बड़े से बड़े त्याग को, आत्म–निवेदन को, संसार ने अपना अधिकार नहीं अपितु उसका अद्भुत दान समझकर नम्रता से स्वीकार किया है? उसके किसी बलिदान को पुरूष ने उसकी दुर्बलता के अतिरिक्त कुछ और समझने का प्रयत्न किया है।''*[3] इतना ही नहीं, अग्नि में बैठकर अपनी पतिव्रता प्रमाणित करने वाली स्फटिक सी स्वच्छ सीता में नारी की युगों की वेदना साकार हो गयी है।......... मनुष्य की साधारण दुर्बलता से युक्त दीन माता का वध करते हुए न पराक्रमी परशुराम का हृदय पिघला, न मनुष्यता की असाधारण गरिमा से गुरू सीता को पृथ्वी में समाहित करते हुए

ISSN : 2319-2178

राम का हृदय विदीर्ण हुआ। मानों पुरुष–समाज के निकट दोनों जीवनों का एक ही मूल्य था। एक जीवित व्यक्ति का इतना कठोर त्याग, इतना निर्मम बलिदान दूसरा हृदयवान व्यक्ति इतने अकातर भाव से स्वीकार कर सकता है। यह कल्पना में भी क्लेश देती है, वास्तविकता का तो कहना ही क्या?[4]

स्वातंत्र्योत्तर काल में नारी अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुई है। वैधानिक रूप से आज नारी को पुरुष के समान सारे अधिकार प्राप्त है, परन्तु नारी कहीं न कहीं आज भी सदियों पुरानी वही नारी है। वह सामाजिक रस्मों रिवाजों को स्वेच्छा से स्वीकार करती हुई पिता, भाई, पति, पुत्र के साथ सुरक्षित महसूस करती है। उस पर परिवार, समाज के संस्कार इतनी गहराई तक जमे हुए है कि वह उनसे इतनी आसानी से मुक्त नहीं हो सकती है। अपनी कोई गलती न होने पर भी अनाचार सहते हुए स्वयं को दोषी मानकर ग्लानि से भर जाती है। आधुनिक जीवन में होने वाले परिवर्तनों ने उसे यह बोध दिया है वह जिस अन्याय को बोध की श्रेणी में रखकर अपने ही ऊपर थोप रही हो उसका वास्तविक उत्तरदायित्व रूढ़िग्रस्त सामाजिक व्यवस्था पर है और वह भीतर ही भीतर तथा कथित सामाजिक के नीचे सुरक्षित, असामाजिक स्वार्थों के विरूद्ध प्रतिक्रिया भी व्यक्त करती रहती है।

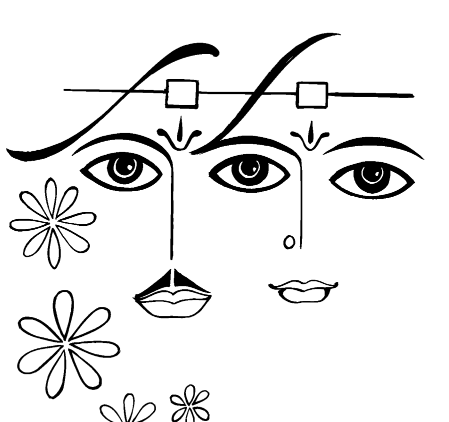

साहित्यिक क्षेत्र में प्रायः पुरुष वर्ग का ही वर्चस्व रहा है। महादेवी वर्मा के आने पर परिस्थितियाँ कुछ बदलती हैं। नगरों एवं महानगरों में शिक्षित एवं नवचेतना–युक्त स्त्रियों का ऐसा वर्ग तैयार हो गया था, जो समाज के विविध क्षेत्रों में अपनी कार्यक्षमता प्रमाणित करने के लिए कटिबद्ध था उसके हाथों की कलम स्त्री से स्त्री का साक्षात्कार करानें लगी। स्त्रियों की मर्जी के खिलाफ जिसने अत्याचार किया, उसे सजा नहीं। अपने दुःखों को भाग्य मानकर स्वीकार करना उसकी नियति है। आखिर कब तक नियति उसके शरीर के साथ–साथ मानस को भी तार–तार करती रहेगी, उसके विचारों की महत्वपूर्ण भूमिका है, लेकिन यह भूमिका प्रकृति या समाज की परिस्थितियों से स्वतंत्र नहीं है। वह उसके नियमों को परख कर ही उन्हें बदलने का काम करती है।

महादेवी वर्मा कहती हैं– *''दुर्बलता जिसका प्रायः कोमलता के नाम से नामकरन किया जाता है। नारी के स्वभाव में कोमलता के आवरण में जो दुर्बलता छिप गई है वही उसके शरीर में सुकुमारता बन गयी है। यह सत्य नही है कि वह दुर्बलता पर विजय नहीं पा सकती पर यह निर्विवाद सिद्ध है कि वह अनादि काल से उसे अपना अलंकार समझती रहने के कारण त्यागनें पर उद्धत ही नहीं होती। उसके विचार में इसके बिना नारीत्व अधूरा है।'*[5]

इस्मत चुगताई ने जब लिहाफ कहानी लिखी तो समाज की रूढ़िग्रस्त मानसिकता की चौखटे हिल गयी। कृष्णा सोबती ने 'यारों के यार' लिखकर नर–नारी के विभाजन को बेमानी सिद्ध कर दिया। मेहरून्निशा परवेज कहती है कि *''नारी के मौन को शब्द नारी ही दे सकती है उसके दुःख को औरत ही समझ करती है। वह औरत के शरीर पर अंकित घावों और निशानों को समझ सकती है।''* नासिरा शर्मा कहती है कि – *''स्त्री यदि अधिकार लेती है तो रिश्ता टूटता है और यदि रिश्ता तो अधिकार छूटता है।''*

भारतीय नारी ने हमेशा से अपने अस्तित्व को प्रमाणित किया है, अपनी क्षमताओं का लोहा मनवाया है। देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन की बात रही हो या समाज सेवा की भावना, भारतीय स्त्रियाँ किसी भी मोर्चे पर किसी से भी पीछे नहीं रही है। समाज की परिवर्तनशील परिस्थितियों में नारी ने अपने को सदैव स्थापित करने का प्रयास सकारात्मक रूप में किया है भारतीय सन्दर्भ में देखा जाये तो स्त्रियों द्वारा अधिकारों की लड़ाई की पहल हमें उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशक में देखने को मिलती है। जब उच्च वर्ग की तमाम स्त्रियों ने अपने प्रभाव का विस्तार हिन्दीभाषी क्षेत्रों में करना शुरू किया। इन महिलाओं में पंडिता रमाबाई, रमाबाई रानाडे राष्ट्रीय आंदोलन के दौर की जिन स्त्री रचनाकारों के बारे में हम आज पढ़ते हैं, जिनके बारे में जानते हैं उनमें सुभद्रा कुमारी चौहान का नाम लिया जा सकता है। इन्होंने राष्ट्रीय अस्मिता के स्वर के साथ–साथ नारी

मधुराक्षर ISSN : 2319-2178

की आवाज को भी इस आन्दोलन में शामिल किया है इस प्रकार सुभद्रा जी ने स्त्री मुक्ति चेतना को प्रखरता प्रदान की है। वे किसी न किसी रूप में नारी की ओजपूर्ण स्थिति को भी परिभाषित करती दिखती है।

लेखिकाओं की इस कड़ी में एक और नाम प्रमुखता से आता है, वह महादेवी वर्मा है। उनकी रचनाओं में स्त्रियों के एकात्म–प्रेम उनकी पीड़ा, असहृयता की अभिव्यक्ति हुई है। महादेवी जी ने 'श्रृंखला की कड़ियाँ' के निबन्धों द्वारा अपना सशक्त एवं मुखर रूप सामने रखकर सभी को आश्चर्यचकित कर दिया है। अपने निबन्धों में वे पुरुष आधारित व्यवस्था के स्त्री के सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन की पड़ताल गहनता से करती दिखायी देती है।

स्वतन्त्रता के पहले दौर में विभिन्न नारीवादी लेखिकाओं में कमला देवी, हेमवती देवी, चन्द्रकिरण सोन रिक्सा, कंचनलता सब्बरवाल का नाम उल्लेखनीय है। जिन्होंने अपनी कहानियों में प्रतिकार का रास्ता अपनाया महिलाओं से सम्बन्धित समस्याओं को बेबसी को, यन्त्रणा को बखूबी दर्शा कर उनकी पीड़ा को स्वर देने का एवं समाधान खोजनें का प्रयास किया है।[6]

स्वातंत्र्योत्तर काल में कई लेखिकाओं के नाम उल्लेखनीय है इस काल की प्रथम पीढ़ी में शशिप्रभा शास्त्री, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा इसके बाद की पीढ़ी में मृदुला गर्ग, राजी सेठ, मृणाल पाण्डे, नासिरा शर्मा, नमिता सिंह, सूर्यबाला, मैत्रेयी पुष्पा, ममता कालिया, सुधा अरोड़ा, प्रभा खेतान, मेहरून्निशा परवेज आदि का नाम लिया जा सकता है।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि स्त्रियों का लेखन भी अपने समय और काल एवं परिस्थितियों के दबावों से मुक्त नहीं रहा है। लिंग भेद के बाद भी स्वयं को साहित्य लेखन में सकारात्मक रूप से और वो भी वोल्ड रूप में स्वयं को स्थापित करना सहज एवं सरल नहीं था। युगीन संघर्षों में अपनी भागीदारी निभाते हुए स्पष्ट वर्गीय पक्षधरता की चर्चा करने का साहस उठाने का श्रेय इन महिला लेखिकाओं का दिया जा सकता है।

संदर्भ–

1. हंस (पत्रिका), सं. राजेन्द्र यादव, जुलाई 2000, पृ. सं. 93, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली।
2. श्रृंखला की कड़ियां, महादेवी वर्मा, पृ.सं. 41, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. वही, पृ.सं. 32
4. वही, पृ.सं. 32–33
5. श्रृंखला की कड़ियां, महादेवी वर्मा, पृ.सं. 32–33,, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
6. नई सहस्राब्दी का स्त्री विमर्श, सं. वीरेन्द्र यादव, पृ. सं. 20, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

संपर्क

हिंदी विभाग,

आचार्य नरेन्द्रदेव नगर निगम महिला महाविद्यालय,

कानपुर (उ.प्र.)

सम्पूर्ण देश में पढ़ा जाने वाला

हिन्दी साप्ताहिक

आख़िर लिखना पड़ा

सज़ग पत्रकारिता का आगाज़

जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर फतेहपुर (उ.प्र.) 212 601

E-Mail :

aalp.news@gmail.com

शोध–लेख

साहित्यानुवाद में नवोन्मेष के प्रतीक : भारतेन्दु

अम्बरीन आफ़ताब

वर्तमान युग में अनुवाद ज्ञान–विज्ञान के अर्जन तथा अन्य भाषा–भाषी मानव समुदाय के बीच संवाद का सशक्त माध्यम है। विश्व की विविध भाषाओं को परस्पर एक–दूसरे के निकट लाने के साथ ही यह अलग–अलग संस्कृतियों के मध्य सेतु की भूमिका भी निभाता है। आज समस्त रूसी साहित्य हिन्दी भाषा में उपलब्ध है, यह अनुवाद की ही देन है। अनुवाद के द्वारा ही विभिन्न भाषाओं के साहित्य का अध्ययन, चाहे उर्दू हो या संस्कृत, हिन्दी भाषा में संभव हो सका है। अतः व्यापक संदर्भों में, अनुवाद विश्व–साहित्य से परिचय का साधन होने के साथ ही अपनी अस्मिता और परंपरा से साक्षात्कार करने का भी माध्यम है। आधुनिक युग में अनुवाद की महत्ता निरंतर बढ़ी है। देश–विदेश की वैज्ञानिक उपलब्धियों के प्रचार–प्रसार तथा निरंतर निकट आते देशों के बीच सांस्कृतिक आदान–प्रदान के लिए अनुवाद आज के युग की अनिवार्य आवश्यकता बन चुका है। *''अनुवाद अनेक दृष्टियों से विश्व को एक सूत्र में बाँधे हुए है। उसके सहारे ही भिन्न भाषा–भाषी न केवल कंधे से कंधा मिलाकर विश्व को आगे बढ़ा रहे हैं अपितु एक दूसरे के सुख–दुःख को अपना मानकर तादात्म्य का भी अनुभव कर रहे हैं।''*[1]

यद्यपि संस्कृत वाड्मय में अनूदित साहित्य विशेषकर नाटकों की परिपाटी प्राचीन काल से चली आ रही थी परन्तु हिन्दी साहित्य में इसका पर्याप्त अभाव था। राजा लक्ष्मण सिंह ने सन् 1861 में कालिदास कृत 'शकुंतला' का हिन्दी भाषा में सफल गद्यानुवाद प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् भारतेन्दु का इस क्षेत्र में आविर्भाव हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्यानुवाद के फ़लक पर एक नवीन ऊर्जा लेकर अवतरित हुए। उनके अनुवाद कार्य का मूल उद्देश्य अन्य भाषाओं में समाहित ज्ञान से देशवासियों का परिचय कराना था। इसी प्रक्रिया में, अनुवाद–विधा में भी नए–नए आयाम स्थापित होते गए। अतः आधुनिकता के अग्रदूत, भारतेन्दु द्वारा साहित्यानुवाद की दिशा में किए गए कार्य को यहाँ रेखांकित करना अप्रासंगिक नहीं होगा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल–विभाजन करते समय, प्रवृत्तियों के आधार पर आधुनिक काल को गद्यकाल की संज्ञा प्रदान की। हिन्दी साहित्य के इस कालखण्ड तक खड़ी–बोली हिन्दी–गद्य का स्वरूप अस्थिर था। कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज (सन् 1800) की स्थापना से हिन्दुस्तान की देसी भाषाओं के विकास की दिशा में सार्थक प्रयास होने आरंभ हो गये थे। इसमें नियुक्त विद्वानों–लल्लूलाल, सदल मिश्र, इंशा अल्ला खाँ और सदासुखलाल ने खड़ी बोली हिन्दी–गद्य के विकास में पर्याप्त योग दिया। तथापि, उसका स्वरूप अस्पष्ट एवं अपरिमार्जित ही रहा। भारतेन्दु के हिन्दी साहित्याकाश में उदय होने से पूर्व हिन्दी भाषा के नीति–निर्धारण तथा उसके गद्य–स्वरूप को विकसित करने की दिशा में जिन दो व्यक्तियों ने योगदान दिया, उनमें राजा लक्ष्मण सिंह तथा राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' महत्वपूर्ण हैं। राजा लक्ष्मण सिंह ने अपने अनुवाद ग्रन्थों में संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के रूप में अपनी भाषा–विषयक आदर्शों को प्रस्तुत किया। परंतु राजा शिवप्रसाद ने खड़ी बोली में अरबी–फारसी शब्दों का अधिकाधिक समावेश कर उसे उर्दू के समीप ला खड़ा किया। राजा लक्ष्मण सिंह और राजा शिवप्रसाद की विरोधी भाषा–नीतियों के बावजूद हिन्दी–गद्य स्वाभाविक रूप से अपने स्वरूप–निर्धारण की प्रक्रिया की दिशा में आगे बढ़ती रही। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भाषा–संबंधी इन दोनों अतिवादी नीतियों से दूर रहकर जनसाधारण की वाणी को पहचाना। परन्तु खड़ी–बोली हिन्दी गद्य को निश्चित एवं स्थिर रूप प्रदान करने के लिए उन्होंने, आंशिक रूप से, राजा लक्ष्मण सिंह के आदर्शों को ही आत्मसात किया। भारतेन्दु ने एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण लेकर *''हिन्दी भाषा की स्वाभाविकता, उसकी जातीय शैली की रक्षा करने की चेष्टा की।''*[1] इसी कड़ी में, उन्होंने विविध भाषाओं की रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद भी किया। भारतेन्दु द्वारा संस्कृत, अंग्रेज़ी, बांग्ला आदि भाषाओं की रचनाओं का हिन्दी–अनुवाद करने से विशेष लाभ यह हुआ कि हिन्दी भाषा–भाषियों का दूसरी भाषाओं के साहित्य से परिचय हो सका। साथ ही, यह हिन्दी साहित्य की समृद्धि की दिशा में भी एक सार्थक पहल सिद्ध हुआ।

ISSN : 2319-2178

हिन्दी साहित्येतिहास के जिस कालखण्ड में भारतेन्दु का प्रादुर्भाव हुआ, वह काल पुरातन एवं नवीन का संगम था। *''प्राचीन नवीन के उस संधिकाल में जैसी शीतल कला का संचार अपेक्षित था वैसी ही शीतल कला के साथ भारतेन्दु का उदय हुआ, इसमें संदेह नहीं।''*[2]

भारतेन्दु ने विभिन्न भाषाओं के अनेक श्रेष्ठ नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया जिसके माध्यम से हिन्दी नाट्य–विधा के अधुनातन आदर्शों की स्थापना का सूत्रपात हो सका। भारतेन्दु ने युग के महत्व को पहचानकर समाज की एक जाति को दूसरी जाति से जोड़ने के उद्देश्य हेतु अनूदित–साहित्य का सृजन किया। इस प्रकार, वे अन्य भाषाओं के साहित्य से हिन्दी भाषा के पाठकों का भली–भाँति परिचय करवाने में सक्षम रहे। *''हिन्दी भाषा में जो सब भाँति की पुस्तकें बनने के योग्य हैं, अभी वे बहुत कम बनी हैं। विशेषकर के नाटक तो (कुंवर लक्ष्मण सिंह के शकुन्तला के सिवाय) कोई भी ऐसे नहीं बने हैं जिनको पढ़ के कुछ चित्त को आनन्द और इस भाषा का बल प्रगट हो। इस वास्ते मेरी ऐसी इच्छा है कि दो–चार नाटकों का तर्जुमा हिन्दी में हो जाए तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो।''*[3] इसी मनोरथ की सिद्धि हेतु भारतेन्दु ने अंग्रेज़ी भाषा में रचित शेक्सपियर कृत "Merchant of Venice" का हिन्दी भाषा में 'दुर्लभ बन्धु' के नाम से, बांग्ला भाषा में रचित यतीन्द्रमोहन ठाकुर के नाटक का हिन्दी में 'विद्यासुन्दर' के रूप में तथा प्राकृत भाषा में राजशेखर कृत ''कर्पूर मंजरी'' को इसी नाम से अनूदित कर साहित्य सेवा में प्रस्तुत किया। साथ ही, उन्होंने संस्कृत भाषा में विशाखदत्त, कांचन और हर्ष कृत नाटकों को हिन्दी में क्रमशः 'मुद्राराक्षस', 'धनंजय विजय', 'रत्नावली' के रूप में तथा संस्कृत भाषा में ही रचित कृष्ण मिश्र–कृत ''प्रबोध–चन्द्रोदय'' के केवल तीसरे अंक को 'पाखण्ड–विडम्बन' के रूप में अनूदित किया। *''उनके अनूदित नाटक शब्दशः अनुवाद न होकर रूपान्तर अधिक हैं। उनमें वे अपनी थोड़ी–बहुत मौलिकता लाए बिना न रह सके।''*[4] भारतेन्दु ने सबसे पहले बांग्ला भाषा के कवि यतीन्द्रमोहन ठाकुर द्वारा रचित नाटक 'विद्यासुन्दर' का इसी नाम से हिन्दी में अनुवाद (1868) प्रस्तुत किया। यतीन्द्रमोहन ठाकुर ने अपनी कृति संस्कृत के 'चौर पंचाशिका' नाटक के आधार पर लिखी थी। अनुवाद करते समय भारतेन्दु ने भूमिका में लिखा है–*''महाराज यतीन्द्रमोहन ठाकुर ने उसी काव्य का अवलम्बन करके जो 'विद्यासुन्दर' नाटक बनाया था उसी की छाया लेकर आज पन्द्रह वर्ष हुए, यह हिन्दी भाषा में निर्मित हुआ* है।''[5] 'विद्यासुन्दर' में अधिकांशतः गद्य का प्रयोग किया गया है। इस नाटक के अनूदित अथवा मौलिक होने के विषय में कुछ विद्वानों में मतभेद है। परन्तु आचार्य शुक्ल ने इसे अनुवाद ही माना है।[6]

भारतेन्दु ने संस्कृत भाषा के कवि हर्षदेव कृत 'रत्नावली' नाटिका का हिन्दी में भावानुवाद (1868) प्रस्तुत किया। उन्होंने पद्य का अनुवाद ब्रजभाषा पद्य में तथा गद्य का अनुवाद खड़ी–बोली में किया। *''इस नाटिका में मूल संस्कृत में जहाँ छन्द थे वहाँ मैंने भी छन्द किए हैं यदि संस्कृत के छन्दों से इसके छन्दों को मिला के पढ़िए तो इसका परिश्रम प्रगट होगा।''*[7] संस्कृत कवि श्रीकृष्ण–मिश्र की प्रसिद्ध रचना 'प्रबोध–चन्द्रोदय' के तीसरे अंक का अनुवाद भारतेन्दु ने 'पाखण्ड–विडम्बन' (1872) के रूप में किया है। यह नाटक प्रतीकात्मक कथा के आधार पर तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों का यथार्थ स्वरूप प्रस्तुत करता है। *''अनुवाद होते हुए भी उसमें प्रौढ़ता और प्रांजलता है और मौलिक–सी प्रतीत होती है।''*[8] ''धनंजय–विजय'' नाटक कवि कांचन कृत संस्कृत नाटक का छन्दोबद्ध अनुवाद (1873) है। यह वीर रस से परिपूर्ण एक व्यायोग है। इसमें कौरवों एवं पांडवों के बीच युद्ध का वर्णन है जो एक ही अंक में हुआ है। यह नाटक सर्वप्रथम ''हरिश्चन्द्र मैगज़ीन'' में सन् 1873 में प्रकाशित हुआ। इसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

''कजरी ठुमरिन सो मोरि मुख सत कविता सब कोउ कहै।
यह कविवानी बुध–बदन मैं रवि ससि लौ प्रगटित रहै।।''

स्पष्ट रूप से *''धनंजय–विजय के इस भारत–वाक्य को समाज सुधार और देशभक्ति की नई कविता का पहला सूत्र समझना चाहिए। अनुवाद की दृष्टि से यह एक सफल रचना है। इसमें वीर रस का वर्णन सुन्दर ढंग से करते हुए रीतिकालीन कवियों का अनुकरण किया है।''*[9]

सन् 1875 में भारतेन्दु ने प्राकृत कवि राजशेखर कृत ''कर्पूर–मंजरी'' नामक सट्टक का हिन्दी मे अनुवाद किया। इसके कथानक से प्राचीनकालीन नाट्य–शास्त्र और धार्मिक परिस्थितियों पर प्रकाश पड़ता है। अनुवाद करते समय भी भारतेन्दु ने इसके कथा–संगठन में नाट्य शास्त्र के सिद्धान्तों का पालन किया है। रचना के प्रारंभ में भारतेन्दु का यह दोहा दृष्टव्य है–

''भरित नेह नव नीर नीत, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब धन कोऊ, लखि नाचत मन मोर।।''

भारतेन्दु ने संस्कृत के महान कवि विशाखदत्त कृत ''मुद्राराक्षस'' नाटक का इसी नाम से खड़ी बोली में सफल अनुवाद (1878) किया। इसमें दो कूटनीतिज्ञों– चाणक्य और राक्षस के परस्पर संघर्ष की कथा है। भारतेन्दु ने यह नाटक राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' को सादर समर्पित किया है। शाब्दिक अनुवाद करते हुए भी उन्होंने मूल नाटक के भावों की यथासंभव रक्षा करने का प्रयास किया है। इसकी कुछ पंक्तियाँ हैं–

''पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीओ सदा विक्टोरिया रानी।

सूरज चंद प्रकास करै जब लौं रहैं सात हू सिन्धु में पानी।।''[10]

इसी क्रम में, भारतेन्दु ने शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक "Merchant of Venice" का भाषानुवाद 'दुर्लभ बंधु' (1880) नाम से किया। इसका एक अन्य नाम 'वंशपुर का महाजन' है। अनुवाद करते समय भारतेन्दु ने अपने कुछ मित्रों तथा बांग्ला पुस्तक 'सुरलता' की सहायता ली थी। इसके मूल कथानक को भारतीय आवरण देकर नामों का भी भारतीयकरण कर दिया गया है। जैसे, ऐंटोनिया के स्थान पर अनंत, पोर्शिया के स्थान पर पुरश्री आदि। *''अपने पात्रों द्वारा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पश्चिम के अन्धानुकरण के स्थान पर देशी और विदेशी संस्कृतियों का सुन्दर समन्वय उपस्थित किया।''*[11]

भारतेन्दु की यह प्रबल आकांक्षा थी कि हिन्दी भाषा के सर्वांगीण विकास एवं समृद्धि के लिए कर्तव्यनिष्ठ होकर प्रयास किए जाएँ। संसार का समस्त ज्ञान–कोश हिन्दी भाषा में संचित हो सके तथा हिन्दी साहित्य का स्वरूप ज्ञान–रूपी समुद्र के समान विशाल बन सके, इसके लिए उन्होंने अनुवाद को माध्यम बनाकर उत्कृष्ट रचना–कर्म पर बल दिया। भारतेन्दु ने अन्य भाषाओं के ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद देशोन्नति के लिए महत्वपूर्ण माना। उनकी मान्यता थी कि जिस भाषा में भी ज्ञान की धारा बहे, उसे अपनी भाषा में अनूदित करके उसमें निहित ज्ञानात्मक तत्वों का रसास्वादन कर लेना चाहिए–

''अंगरेजी अरु फारसी अरबी संस्कृत ढ़ेर।
खुले खजाने तिनहिं क्यों लूटत लावहु देर।।
सबको सार निकाल कै पुस्तक रचहु बनाई।
छोटी–बड़ी अनेक विध बिबिध विषय की लाई।''

एक सफल साहित्य–सर्जक केवल वर्तमान में ही नहीं जीता है, अपितु वह अतीत का सिंहावलोकन भी करता रहता है। उसकी लेखनी में जहाँ एक ओर अतीत का चित्र उभरता है वहीं दूसरी ओर उसका रचना–कर्म भविष्य को भी इंगित करता चलता है। भारतेन्दु की अनूदित रचनाएँ इस तथ्य को अक्षरशः प्रमाणित करती हैं। उनके अनूदित नाटकों ने अतीत के संदर्भ में वर्तमान को जीवंत बनाया। साथ ही भविष्य को सँवारने का भी प्रयत्न किया। देशवासी अपनी निज भाषा में ज्ञान के समस्त स्रोतों को अंगीकार कर सकें, इसलिए वे अनुवाद की उपयोगिता सिद्ध करते हैं–

''पै सब विद्या की कहूँ होई जु पै अनुवाद।
निज भाषा महँ तो सबै याको लहै सवाद।।
राजनीति समझे सकल पावहि सत्त्व विचार।
पहिचानै निज धर्म को जाने शिष्टाचार।।
दूजे के नहीं बस रहै सीखे विविध विवेक।
होई मुक्त दोउ जगत के भोगे भोग अनेक।।''

अपने नाटकों के अनुवाद में भारतेन्दु ने केवल शब्दानुवाद का आश्रय नहीं लिया है। इसके विपरीत, उन्होंने भावानुभूति की सरस एवं सहज अभिव्यक्ति को प्रधानता दी है। उनके अनुसार, मूल कृति के भावों को अनूदित कार्य में सुरक्षित रखा जाना चाहिए जिससे कि वह अनूदित रचना पाठकों को मूल जैसी रमणीयता और आनंद की अनुभूति करा सके। अनुवाद के विषय में उनका सिद्धान्त यह है कि *''बिना पूर्व–कवि के हृदय से हृदय मिलाकर अनुवाद करना झक मारना ही नहीं, कवि की लोकान्तर आत्मा को नरक कष्ट देना है।''* अतएव, भारतेन्दु का साहित्यनुवाद के प्रति दृष्टिकोण सर्वथा संतुलित था। कई स्थलों पर उन्होंने मौलिकता का भी समावेश किया है जिससे उनके अनूदित नाटक अधिक प्रभावोत्पादक एवं सरस बन पड़े हैं। भारतेन्दु ने अपने *''अनुवादों में नाट्य तत्वों का समन्वयवादी स्वरूप''* प्रयुक्त किया है। वे अन्य भाषाओं के साहित्यिक अनुकरण के पक्षधर थे, अन्धानुकरण के नहीं। संभवतः यही कारण है कि उनके अनूदित नाटकों में पूर्व और पश्चिम, प्राचीन और नवीन के मध्य एक सुन्दर समन्वय स्थापित हो सका।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि संस्कृत, बांग्ला, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं की भाव–प्रधान एवं उत्कृष्ट रचनाओं का अनुवाद कर भारतेन्दु ने हिन्दी साहित्य–कोश को अत्यन्त समृद्ध किया। इन नाटकों ने हिन्दी–गद्य को परिष्कृत करने के साथ ही हिन्दी–भाषा के प्रचार–प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। साथ ही, अन्य भाषाओं से अनभिज्ञ देशवासियों का भी इन रचनाओं में अन्तर्निहित ज्ञान से साक्षात्कार हो सका। अतः यह कहना समीचीन होगा कि हिन्दी साहित्यानुवाद के क्षेत्र में भारतेन्दु का अनुदित साहित्य मील का पत्थर सिद्ध हुआ। निश्चय ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्यानुवाद में एक नवीन उन्मेष के प्रतीक हैं।

संदर्भ–

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, तृतीय पेपर बैक्स संस्करण, सं0 2060 वि., नागरी प्रचारिणी सभा, पृ. 252
2. भारतेन्दु ग्रन्थावली प्रथम–भाग, 'रत्नावली' नाटिका की भूमिका, पृ. 661
3. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ. 72
4. भारतेन्दु ग्रन्थावली, प्रथम भाग, 'द्वितीय आवृत्ति का उपक्रम', पृ. 313
5. आ. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 251
6. भारतेन्दु ग्रन्थावली–प्रथम भाग, 'रत्नावली' की भूमिका, पृ. 661
7. रामगोपाल सिंह चौहान, भारतेन्दु–साहित्य, 1957, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ. 167
8. डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, 1966, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 165
9. भारतेन्दु ग्रन्थावली प्रथम–भाग, मुद्राराक्षस, उपसंहार (क), पृ. 498
10. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ0 160
11. डॉ. वीरेन्द्र कुमार शुक्ल, भारतेन्दु का नाट्य साहित्य, 1995, पृ. 161

संपर्क : **शोधार्थी, हिंदी विभाग, अ.मु.वि. अलीगढ़**

शोध–लेख

हिन्दी उपन्यासों में पूर्वोत्तर के स्वर

अतुल कुमार पाण्डेय

संपर्क : **शोधार्थी, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग**

आदिवासियों की समस्या सांस्कृतिक हैं न कि सामाजिक और आर्थिक, आदिवासी विमर्श के केन्द्र में उसकी अस्मिता एवं अस्तित्व हैं। आदिवासी संस्कृति अपने आप में एक अनूठी संस्कृति है। आदिवासी संस्कृति का मूल उसका दर्शन हैं। आदिवासी साहित्य को समझने से पहले उसके दर्शन को समझना आवश्यक हैं। आदिवासी दर्शन प्रकृतिपरक हैं। प्रकृति के बिना आदिवासी दर्शन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आदिवासी समाज में धरती,प्रकृति और सृष्टि के ज्ञात–अज्ञात निर्देश, अनुशासन और विधान को सर्वोच्च स्थान प्राप्त हैं। आदिवासी कभी भी सृष्टि की किसी रचना को केवल अपना नहीं मानते बल्कि उन पर सब का अधिकार स्वीकार करते हैं, किंतु अपने को संरक्षक जरूर मानते हैं। ये लोग प्रकृति से उतना ही ग्रहण करते हैं जितने से जीवन निर्वाह हो सके। इनमें लेने के बदले देने की प्रवृति पायी जाती हैं। आदिवासी समाज में ज्ञान की परंपरा मौखिक हैं ये लोग विभिन्न प्रकार के ज्ञान जैसे नृत्य–संगीत चिकित्सा व्यवहारिक ज्ञान, परंपरा, रीति–रिवाज आदि अपने पुरखों से सीखते हैं इनके समाज में ज्ञान विज्ञान का हस्तांतरण कुछ परिवर्तन के साथ पीढ़ी दर पीढ़ी होता रहता हैं। इनके समाज में साहित्य भी मौखिक रूप में अधिक मिलता है,जिसे हम लोक साहित्य कहते हैं।

आदिवासी समाज शेष समाज से भिन्न हैं, इसलिए इनकी संस्कृति भी अन्य समाज से भिन्न हैं। इस भिन्नता के कारण ही इनका साहित्य भिन्न और विशिष्ट हैं। आदिवासी साहित्य के प्रतिमान अन्य साहित्य से भिन्न हैं। इसी कारण इस साहित्य को अन्य साहित्य के प्रतिमानों से नहीं आका जा सकता। आदिवासी साहित्य को किसी गैर आदिवासी दृष्टि से देखना इसके साथ अन्याय हैं। मुख्य धारा के दर्शन और साहित्य की अवधारणा यह है कि "सभी जीवों में मनुष्य श्रेष्ठ है और परम तत्त्व से साक्षात्कार यानि मोक्ष जिंदगी का सर्वोच्च लक्ष्य है। सत्यम शिवम सुंदरम, मनुष्यता और संपूर्ण विश्व कि मूल भावना हैं।" इस दर्शन में मनुष्य को सबसे बड़ा बताया गया हैं और मोक्ष को सबसे बड़ा लक्ष्य कहा हैं। जबकि आदिवसी दर्शन में ऐसा नहीं हैं आदिवासी दर्शन सबको समान मानता है। "सृष्टि सर्वोच्च नियामक सत्ता है। संपूर्ण सजीव और निर्जीव जगत तथा प्रकृति सबका अस्तित्त्व एक–समान है। मनुष्य का धरती, प्रकृति और सृष्टि के साथ सहजीवी संबंध है।" आदिवासी दर्शन और साहित्य में मनुष्य,पेड़–पौधा, जीव और निर्जीव में किसी को श्रेष्ठ स्थान नहीं दिया गया है,बल्कि सभी को एक प्रकृति के अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। आदिवासी दर्शन और साहित्य में सभी को समान स्थान प्राप्त है, क्योंकि आदिवासी दर्शन समानता पर आधारित दर्शन है। इसमे व्यक्तिगत की जगह सामूहिकता,सहजीविता सहअस्तित्व और प्रकृति के साथ सहज सामंजस्य पर बल दिया गया है। आदिवासी दर्शन में सत्य–असत्य,सुंदर–असुंदर मनुष्य–अमनुष्य जैसी अवधारणा नहीं हैं। दलितों की समस्या सामाजिक है, जबकि आदिवासियों की समस्या सांस्कृतिक और दार्शनिक है। दलित विमर्श में चेतना पर बल होता है तो आदिवासी विमर्श में आदिवासीयत पर अर्थात आदिवासी दर्शन पर।

आदिवासी विमर्श के कुछ प्रमुख प्रतिमान इस प्रकार है–1. सामूहिकता, 2. समानता, 3. श्रम को महत्व, 4. मैत्री भाव, 5. स्वाधीनता, 6. प्रकृति आधारित ज्ञान, 7. अपरिग्रह की प्रवृत्ति, 8. नैतिकता एवं पवित्रता, 9. कम से कम में जीवन निर्वाह, 10. अतीत स्मृति एवं पारंपरिक ज्ञान को महत्व 11. परंपरा एवं रूढ़ियाँ, 12. स्वानुभूति, 13. प्रकृति न्याय, 14. प्रकृति सहचर, 15. सरलता और 16. स्वभाषा। पूर्वोत्तर के आदिवासियों की मूल समस्या उनके पहचान की है। वे अपने संस्कृति को लेकर बहुत सचेत हैं। अग्रेजों के समय से ही वे अपनी पहचान को लेकर संघर्ष कर रहे है। "झारखंड के आंदोलन से आदिवासी साहित्य पैदा हुआ,तो पूर्वोत्तर में पहचान के आंदोलन ने जो अग्रेजों के समय से ही शुरू हो गया था,साहित्य को समृद्ध किया।" पूर्वोत्तर भारत अभी तक भारत के अन्य भागों की अपेक्षा अज्ञात और उपेक्षित रहा है पूर्वोत्तर भारत के बारे में शेष भारत के लोगों के पास यथार्थ जानकारी का अभाव नजर आता हैं। जानकारी के अभाव के कारण लोग अफवाह या गलत सूचना को भी सही मान लेते हैं। कुछ अज्ञानी लोग पूर्वोतर के बारे में नकारात्मक बातें फैलाते रहते है। इससे नकारात्मक सोच का निर्माण हुआ है। इस नकारात्म सोच को दूर करने की आवश्यकता हैं। पूर्वोत्तर के लोग अत्यंत सरल स्वभाव के होते है। उनके मन में छल–कपट प्रपंच आदि नहीं होता हैं। "पूर्वोत्तर का समाज सीधे–साधे,छल–छद्म से दूर लोगों का समाज है जिनमे एक दूसरे पर विश्वास करने,कहे हुए को निभाने और एक दूसरे से मिल–जुल कर रहने की प्रवृत्ति दिखाई देती है,

ISSN : 2319-2178

पूर्वोत्तर के लोगों का बाहर से आए हुए लोगों के साथ अनुभव बहुत अच्छा नहीं रहा है क्योंकि बाहर से आए हुए ज्यादातर लोगों ने इनको छला ही हैं। इसी कारण ये हमेशा बाहरी लोगों से प्रतिरक्षात्मक व्यवहार करते हुए देखे जा सकते हैं। इनका समाज हमारे समाज की अपेक्षा खुला समाज होता है। अब इनके समाज में बाहरी लोगों का प्रवेश निषेध हैं। हिन्दी साहित्य में पूर्वोत्तर लगभग अनुपस्थित सा दिखायी देता है। हिन्दी साहित्य के लंबे इतिहास में पूर्वोत्तर को लेकर बहुत कम रचनाएँ मिलती हैं।

आधुनिक काल में पूर्वोत्तर को लेकर कुछ यात्रा वृतांत,संस्मरण, कहानियाँ और उपन्यास लिखे गये हैं। इसके अतिरिक्त पूर्वोत्तर को लेकर कुछ कविताएँ भी मिलती है, परंतु यह नहीं कहा जा सकता कि इन रचनाओं में पूर्वोत्तर का पूरा जीवन,उनकी संस्कृति और वैचारिकता, पूरी तरह प्रकट हो पायी है। इनमें उपन्यास एक ऐसी विधा है जिसमें पूर्वोत्तर को लेकर कुछ लेखकों ने यहाँ के जनजीवन को चित्रित करने का प्रयास किया है परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि यह चित्रण न तो जनजातीय दृष्टि से किया गया है न ही उनमें आदिवासी वैचारिकता का समावेश है, बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वोत्तर के आदिवासी समाज का चित्रण इन रचनाकारों ने प्रवासी मानसिकता की दृष्टि से अधिक किया है, जिसमे एक तरह का दोहरापन या अलगाव परिलक्षित होता है।मेरी जानकारी में पूर्वोत्तर को लेकर अभी तक 11 उपन्यास लिखे गए हैं। जो इस प्रकार है– 1. ब्रह्मपुत्र–देवेंद्र सत्यर्थी 2. मुक्तवाली–बलभद्र ठाकुर 3. रक्तयात्रा–भिक्खु 4. उत्तरपूर्व–लाल बहादुर वर्मा 5. जय आई असम–नवारूण वर्मा 6. जहाँ बाँस फूलते है–श्री प्रकाश मिश्रा 7. :पतिल्ली की कथा–श्री प्रकाश मिश्रा 8. मुक्ति दृमहेंद्र नाथ दुबे 9. आहुति–श्रीधर पाण्डेय 10. उफ्फ–प्रमोद कुमार तिवारी 11. देश भीतर देश–प्रदीप सौरभ। इन उपन्यासों में मैं केवल कृष्ण चन्द्र शर्मा द्वारा रचित रक्तयात्रा की चर्चा करना चाहता हूँ। इस उपन्यास में रचनाकर ने कथारस के निमित चटपटे संदर्भ का उल्लेख किया है। इस उपन्यास में रचनाकर के नकारात्मक दृष्टिकोण का भी उल्लेख कहीं–कहीं मिलता हैं। यह उपन्यास 'भिक्खु' द्वारा नागालैंड के संघर्ष पर लिखा गया है। उपन्यासकार ने नागा संघर्ष को तीन खंडो में बांटा है जो इस प्रकार है– पहला खंड, आदिम जीवन– शिरच्छेदक, दूसरा, युगांतर–गोरे आए और तृतीय, नया सवेरा–संघर्षो की राह। इस उपन्यास में आदिम जीवन–शिरच्छेदक में नागाओं के जीवन–विधान समाज– विधान कला–संस्कृति, प्रकृति परिवेश ,आस्था–विश्वास, देवी–देवता, रूढ़ि–परंपरा आदि का अत्यंत सजीव, हृदयग्राही और वस्तुगत चित्रण किया गया है। तत्कालीन समय में नागा लोग छोटे–छोटे कबीलों में बटे हुए थे। इन कबीलों में आपस में संघर्ष भी होता था। आदिम नागा प्रकृति के उपासक थे और इनका मुख्य व्यवसाय कृषि ही था। कृषि पूर्णतः पारंपरिक पद्धति पर आधारित थी। अकाल का कारण किसी मृतक का अंतिम संस्कार का न होना माना जाता था और उसके निवारण के लिए शव–पूजन का विधान था। शगुन–अशगुन का विचार मुर्गे की गर्दन ऐंठकर किया जाता था। नागा समाज में लड़के और लड़कियाँ अपने पसंद से विवाह करने के लिए स्वतंत्र थे, किंतु अपने माता–पिता की अनुमति लेनी आवश्यक थी। "लड़के और लड़कियाँ गाँव में बने अलग–अलग शिविरों में रहते थे और अपनी पसंद के अनुरूप विवाह करने के लिए स्वतंत्र थे, हालांकि अपवाद स्वरूप उन्हे अपने माता–पिता से सहमति लेनी पड़ती थी।" नागा समाज में एक अच्छी बात यह भी थी कि दहेज वर पक्ष कन्या पक्ष को देता था, इसके कारण ही हमारे आधुनिक समाज कि तरह उनके समाज में लड़की का जन्म बोझ नहीं माना जाता था। इस उपन्यास के दूसरे पड़ाव में अंग्रेजों का आगमन तथा अंग्रेजों के आने के बाद नागा जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का सचित्र वर्णन हुआ है। अंग्रेजों के आने के बाद नागा धीरे–धीरे अपने धर्म से दूर होते गए एवं ईसाई धर्म के रीति–रिवाजों को अपनाने लगे। "नयी पीढ़ी नयी व्यवस्था को सहज ही स्वीकार कर लेती, किंतु पिछली पीढ़ीयों को अपने रीतियों–नीतियों, धार्मिक–सामाजिक–सांस्कृतिक मान्यताओं, आचार–विचार, भाषा–संस्कृति से रक्त–मांस का संबंध होता है।" अंग्रेजों ने नागाओं को अभ्यंतर क्षेत्र घोषित करने के साथ–साथ उन्हें शेष भारत से अलग–थलग करने की कोशिश शुरू कर दिया था। इधर ईसाई मिशनरियाँ भी धर्म के नाम पर इन लोगों को शेष भारत से अलग करने लगी। पढ़े–लिखे नौजवानों ने अंग्रेजों का समर्थन किया, किंतु पुराने लोगों ने इन सब कार्यो का विरोध किया। जिसके परिणामस्वरूप पुरानी पीढ़ी के लोगों को दोहरा विरोध झेलना पड़ा। एक तरफ अपनी संतानों से जो ईसाई धर्म स्वीकार कर चुके थे तो दूसरे तरफ अंग्रेजों से। तीसरा पड़ाव नया सवेराः संघर्षो की राह के अंतर्गत स्वतंत्रता के बाद से नागालैंड के गठन तक के संघर्षो की समर गाथा को चित्रित किया है। 'नागा नेशनल काउंसिल' के गठन के साथ ही नागा राज्य की माँग शुरू हो गई। कुछ नागा भारत के अंदर रहकर अपने ढंग से अपना भविष्य सवारना चाहते थे, तो कुछ अलग राष्ट्र की माँग कर रहे थे। 'नागा नेशनल काउंसिल' के सेक्रेटरी टी. अलिबा भारत के अंदर अपना स्वतंत्र अस्तित्व एवं अस्मिता चाहते थे। "मुझे इस बात की परवाह नहीं कि हिंदुस्तान में कांग्रेसी हुकूमत हो या पाकिस्तानी। मगर हमे एक अलग नस्ल होने के नाते अपने ढंग से अपना भविष्य बनाने और सवारने का हक होना चाहिए।" अलिवा का

स्वप्न यह था कि हम देश के अंदर एक स्वतंत्र नागा देश कि तरह रहे अर्थात हमारी सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वतन्त्रता में किसी बाहरी लोगों का दखल न हो। "मेरा कहने का मतलब है कि हम अपने देश के भीतर पूरी तरह आजाद हो बस बाहरी सुरक्षा जैसे व्यापक मामले में हिंदुस्तान से जुड़े रहे। हमे अपने इस हक के लिए लड़ना होगा। हमे अपने देश के भीतरी आजादी को हासिल करना होगा।" नागा नेशनल कौंसिल का एक सदस्य विलेले था, जो अलिवा के कुछ बातों से तो सहमत था, किंतु कुछ बातों से असहमत भी था। "विलेले को हिंदुस्तान से किसी भी रूप में जुड़े रहना पसंद न था। फिर भी उसने तालियाँ बजाई। वह इस बात से तो सहमत था कि नागाओं को अपने भविष्य कि रचना अपने ढंग से करने का पूरा हक होना चाहिए।" *"मैं अलीवा कि इस बात के खिलाफ हूँ। हमें पूरी आजादी चाहिए, अधूरी आजादी नहीं।"* विलेले नागालैंड को एक अलग राष्ट्र के रूप में देखना चाहता था जबकि अलीवा भारत के अंदर ही नागालैंड को एक अलग राज्य के रूप में देखना चाहता था। सैख्त्री नागा नेशनल काउंसिल का सेक्रेटरी था, जो अलीवा का उतराधिकारी बना, वह अलीवा की ही तरह उदार विचार का था। सैख्त्री ने पूछा– आखिर आजादी क्या है? फिर अपने प्रश्न का आप ही जबाब देते हुए कहा था– *"आजादी वह है जिसे पाकर हम अपनी जिंदगी संवार सके, अपने धर्म और संस्कृति की रक्षा कर सके। अपनी मजिल आप तय कर सके।"*

"सच पूछे तो खतरा हमें हिंदुस्तान से नहीं, हिंदुस्तान की फौजों से नहीं बल्कि अपने लोगों से है जो जबरदस्ती सरपरस्त बन बैठे हैं। जो खुद गुमराह हैं और हमे भी गुमराह करना चाहते है।" विचो विलेले की चचेरी बहन थी। वह विलेले और फिजों से बहुत प्रभावित थी, इसलिए वह उन आंदोलनकारियों के साथ–साथ जंगल भटकती थी और उनकी देखभाल नर्स के रूप में करती थी। सैख्त्री की हत्या के बाद उसको हिंसा मार्ग से घृणा हो गई, यहाँ तक कि वह अपने सगे भाई विजेलू से भी घृणा करने लगी थी– *"नागालैंड की आजादी की जो तस्वीर उसके मन में थी वह विकृत हो उठी वह यही सोचती रह जाती कि जो आजादी आदमी को शैतान बना दे उस आजादी से लाभ ही क्या जिस आजादी कि नीव क्रूरतापूर्वक मारे गए लोगों की लाशों पर रखी हो उस आजादी में कौन सुरक्षित रह सकता है?"*

संदर्भ :

1. आदिवासी साहित्य विमर्श,गंगा सहाय मीणा(सं), अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली
2. आदिवासी दर्शन और साहित्य, वंदना टेटे (सं), विकल्प प्रकाशन, दिल्ली
3. रक्तयात्रा, भिक्खु, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
4. वाङमय,सगुफ्ता नियाज आदिवासी विशेषांक–2, अलीगढ़

अपनी कृतियों के प्रकाशन हेतु संपर्क करें

कम से कम लागत
और
कम से कम समय

लागत आपकी, श्रम हमारा!
75 फीसदी प्रतियाँ आपकी,
25 प्रतिशत हमारी

विशेष :– आपकी कृतियों व उन पर विद्वानों द्वारा लिखित समीक्षाओं द्वारा विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में व्यापक प्रचार।

मधुराक्षर प्रकाशन
जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर ,
फतेहपुर (उ0प्र0) 212 601
E-mail :
madhurakshar@gmail.com

चलते–चलते

साहित्य में आस्था : बदलते स्वरूप

डॉ. कृष्णा खत्री

मनुष्य से सामाज बनता है, समाज मनुष्य को बनाता है। इन दोनों को वाणी देता है साहित्य! जो जीवन के विभिन्न धरातलों पर विभिन्न तत्वों से निर्मित होकर विभिन्न भावों-विचारों के माध्यम अपना परिचय कराता है और मनुष्य के व्यक्तित्व को नये आयाम देता है जहां कई प्रकार के भाव अभाव पलते है। विश्वास पनपते है, आस्थाएं जन्म लेती है। कालांतर में यह सब बदलते रहते हैं। नये-नये आकार ग्रहण करते रहते है। परिवर्तन विकास प्रक्रिया का मूल तत्व है और यही उसका पहली पायदान भी, जिस पर समय रथ अपना पहला कदम रखकर पायदान-दर-पायदान चढ़ता है.... आगे बढ़ता है। जिसके फलस्वरूप बहुत कुछ धराशाई होता है, तो बहुत कुछ नवनिर्मित भी। यही सृष्टि का नियम भी है! तभी तो पल-पल नये-नये रंग बदलता है वक्त! दिन-रात बदलते हैं, मौसम बदलते हैं।

आदि से आज तक के साहित्य का अवलोकन करें तो एक बात स्पष्ट रूप से सामने आती है.... वो है जीवन के प्रति आस्था। आस्था के भी रंग-रूप और स्वरूप बदलते हैं, मिजाज बदलते हैं। पर उसका वजूद नहीं बदलता जो किसी न किसी रूप में हमेशा कायम रहता है- कभी भोग में तो कभी भक्ति में! पर आस्था रहती जरूर है। भोग और भक्ति जीवन के दो प्रमुख पहलू है। इतिहास गवाह है -भोग से उसे मन ने भक्ति के आंचल में पनाह ली तो भक्ति से सराबोर मन भोग के समंदर में गोते लगाने लगा। इन सब का लेखा-जोखा मिलता है- वेदों की ऋचाओं से लेकर आज की कथा-कहानियों में, गीतों-ग़ज़लों में, यहां तक कि इलेक्ट्रानिक मीडिया में भी इसके दर्शन होते हैं। आदि से आज तक के साहित्य ने अपनी कई लम्बी यात्राएं तय की, कई पडावों पर अपने मुकाम बनायें। पहलू कोई भी रहा हो, भोग और भक्ति दोनों ही एक-दूसरे के पूरक रहे हैं। एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। कहा भी गया है- *''भूखे पेट न भजन होय गोपाला।''* इसी के आधार पर 'भोग से योग' तक की यात्रा का सीधा समीकरण सामने आता है, जहां भक्ति का निर्माण होता है। जब तक ये तत्व नहीं होंगे, तब तक आस्था भी नहीं होगी। विश्वास नहीं होगा तो कहीं कोई जुड़ाव (योग) भी नहीं होगा। यहां जुड़ाव ही आस्था को जन्म देता है। कालजयी साहित्य वही बना है, यहां आस्था रही है।

वैदिक साहित्य में प्राकृतिक तत्वों के एवं शक्तियों के प्रति आस्था अपने पूरे दम-खम के साथ सामने आती है। भक्तिकाल की आस्था आध्यात्मिक ईश्वर के निर्गुण-सगुण रूपों में विचरण करती आधुनिककालीन साहित्य में जिन्दगी की जमीन से पनपी, जुड़ी समस्याओं को लेकर चलती है। प्रेमचंद युग से उत्तर आधुनिक युग में कई वादों ने, कई विमर्शों ने जन्म लिया, इन्हीं के आधार पर मनुष्य की सोच बदली। विश्वास भी अलग-अलग स्तरों पर बदले। समाप्त कभी कुछ नहीं हुआ......! बस सब चेहरे बदल-बदल कर मिलते रहे, वो भी अपने-अपने तेज अंदाज में। उत्तर आधुनिक यानी कि वर्तमान साहित्य किसी भी वाद, विचार और विमर्श का हो या किसी दौर का हो, सब में ज़िन्दगी की ज़मीन से पनपी-जुड़ी समस्याओं का चित्रण है तो उनसे मुक्ति पाने की जद्दोजहद भी। यही साहित्य का मूल स्वर रहा है.... आस्था का भी यही मूल स्वर है। भूमंडलीकरण के दौर का यंत्रीकरण जिसने जीवन को सुख-सुविधाओं से नवाज़ा है तो मशीन बनाने के भी रख दिया। इसका हिसाब-किताब भी तो हर प्रकार (गद्य-पद्य) के साहित्य में मिलता है एक तरफ इन सुख सुविधाओं के प्रति लालच दे तो दूरी तरफ शिकायत भी। दोनों रूपों में जीवन के प्रति आस्था विद्यमान है। इस लालच और शिकायत में कई बार आस्था बिखरी-बिखरी कमजोर पड़ती सी नज़र आती है तो कहीं ठहरी सी भी, लेकिन टूटती नहीं न ही खत्म होती है। हां, कहीं सिरा पतला पड़ता सा जरूर लगता है... पर थोड़ा आगे चलकर वही मुटियाने लगता है, मजबूतीपन पाने लगता है। उदाहरण के लिये आधुनिक, उत्तर आधुनिक कालीन साहित्य का जिक्र करना वाजिब होगा। हालांकि यह साहित्य-सागर अथाह है... विशाल है, जिसका न कोई तल है न कोई ओर-छोर है... जहां हमारे कदम थम जायें!

ISSN : 2319-2178

प्रेमचंद युग अपने आप में साहित्य जगत की यात्रा करने वालों के लिए एक परिपक्व पड़ाव है, तो जाहिर है प्रेमचंद साहित्य का जिक्र न करना धृष्टता होगी। फिर प्रेमचंद-साहित्य से भला कौन अनभिज्ञ है। गोदान हो या गबन, निर्मला हो या सेवा सदन या फिर अन्य उपन्यास और कहानियां.... वैसे तो उनकी हर रचना अपनी-अपनी आस्था को लेकर चलती है, नये-नये रूपों और आयामों के साथ अपना परिचय कराती है। पर यहां 'कफन' कहानी की बात करना चाहूंगी-

'कफन' प्रेमचंद की एक सशक्त यथार्थवादी कहानी है। इस कहानी में जहां एक तरफ शोषितों और पीड़ितों के प्रति करुणा और सहानुभूति का भाव व्यक्त हुआ है, वहीं शोषकों और उत्पीड़कों के प्रति एक तीव्र आक्रोश और वितृष्णा का भाव। साथ ही सामाजिक और धार्मिक अविश्वासों एवं आडंबरों पर करारा व्यंग्य भी हुआ है। जो वर्ग घीसू और माधव की कामचोरी, बेहयाई, निट्ठलेपन और ढीठपन के लिये उन्हें कोई काम तक देने को तैयार नहीं होता, वही अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के लिये बुधिया के कफ़न के लिए पैसे दे देता है। घीसू-माधव द्वारा खर्च किये जाने पर कफ़न की व्यवस्था भी कर देता है। दूसरी तरफ घीसू उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, जिसके लिये जीवन के बजाय मृत्यु ही श्रेष्ठ है... कम से कम एक वक्त का भरपेट खाना तो मिलेगा वो भी मनपसंद। यहां दोनों वर्गों की आस्था के अपने-अपने सच हैं। अमीर वर्ग के लिये प्रतिष्ठा जीवन मे विशेष महत्व रखती है, जो एक तरह से उनकी अपनी आस्था का ही एक स्वरूप है। दूसरी तरफ घीसू-माधव का भी अपना भोगा हुआ सच है, किसी भी तरह अपनी पूर्ति करना अपने लिये हासिल करना ही इनकी अपनी आस्था का स्वरूप है। यहां यह परिलक्षित होता है कि आस्था बिखर रही है, छीज रही है.... फिर भी स्वयं के प्रति पूरी तरह से है, स्वार्थ का जामा पहन कर ही सही, पर है तो! घीसू को ठाकुर की बारात के पकवान याद आना और 'आज' पर टिप्पणी करना- *''अब कोई क्या खिलायेगा? वह जमाना दूसरा था। शादी-ब्याह में मत खर्च करो। पूछो-गरीबों का माल बटोर-बटोर कर कहां रखोगे? बटोरने में तो कमी नहीं है। हां, खर्च में किफायत सूझती है।''* या फिर ये पंक्तियां देखिए- *''माधव भी हँसा- इस अनपेक्षित सौभाग्य पर। बोला बड़ी अच्छी थी बेचारी। मरी भी तो खूब खिला-पिलाकर।''* इन दोनों वक्तव्यों में घीसू माधव का अनुभव-जन्य, उनका भोगा सच ही उनके अपने जीवन के प्रति आस्था बनकर व्यक्त हुआ है, और संपन्न वर्ग का भी अपना भोगा सच है जहां इंसानियत से बढ़कर अंधविश्वास, दिखावा और आडंबर है जो प्रतिष्ठा के रूप में सामने आया है! यही उनकी अपनी आस्था है, अपने प्रति। अलग-अलग समीकरणों से गुज़रती आस्था स्वार्थ की सलीब पर टंगी है। आप सोच रहे होंगे कि मुंशी प्रेमचंद के तमाम उन आदर्शवादी सात्विक आस्था से परिपूर्ण रचनाओं को न लेकर 'कफन' कहानी को ही मैंने क्यों चुना? जाहिर है कि यह कालजयी कहानी जीवन के ज्वलंत यथार्थ को तो दर्शाती ही है, वहीं जीवन के प्रति 'यथार्थ आस्था' के भाव को भी व्यक्त करती है। इसी तरह सूर्यबाला की कहानी 'सुमिन्तरा की बेटियां' की बेटियां अक्सर मेरे दिलो-दिमाग पर दस्तक देती है। उसका पिता ढोढेलाल जब दूसरी शादी कर लेता है, उसकी मां को धोखा देता है तो किस तरह वह अपना आक्रोश व्यक्त करती है। ढोढेलाल की कब्र बनाकर कब्र को पीटती हुई कहती है- *''ढोढेलाल मर गिया!''* मां को यह सब देखकर अपनी बेटियों के प्रति प्रेम और गर्व महसूस होता है। यही वो आस्था है जो माँ-बेटियों को एक-दूसरे के प्रति निश्छल, पवित्र व सात्विक प्रेम अभिव्यक्त होता है जो जीवन के प्रति आस्थारूपी प्रवाह बनकर बहता है। जीवन के प्रति आस्था अपनी पूरी जिजीविषा के साथ व्यक्त हुई है, सूर्यबाला के साहित्य में।

अल्पना मिश्र की कहानी 'छावनी के बेघर' कहानी में आस्था विभिन्न धरातलों के साथ व्यक्त हुई है। अल्पना मिश्र की कहानी 'छावनी के बेघर' कहानी में आस्था विभिन्न धरातलों पर छीजती-बिखरती नज़र आती है। कहीं-कहीं टुकड़ों में बंटी पूरी तरह से टूटती-सी लगती है, लेकिन अपनेपन का भाव विश्वास और आस्था को अपने में समेटे रहता है। देश के लिए अपना सब कुछ दांव पर लगाने वाले सिपाही के परिवार को भी 'रूल एंड रेग्यूलेशन' के तहत किस तरह दुधारी तलवार पर लटके रहना पड़ता है, जहां बार-बार भरोसा टूटता सा लगता है... फिर नये सिरे से ज़िंदगी की जद्दोजहद को बड़े आत्मविश्वास से थाम लेता है। मेजर कुमार अपने परिवार को छोड़कर फ्रंट पर जाते हैं, क्वार्टर में उनके जूतों के निशानों को किस कदर मिसेज कुमार सहेज कर रखती है। जबकि उनकी उपस्थिति में इन्हीं निशानों के लिये झगड़ती थी कि आप घर गंदा कर देते है। कौन बार-बार पोंछे....। और.....अब.....! यहां प्रेम और भावनाओं से परिपूर्ण आस्था का स्वरूप देखा जा सकता है। दूसरी तरफ जब उनके क्वार्टर खाली करने के लिए कहा जाता है, दो कमरों के मकान में शिफ्ट होने की बात होती है और वह भी सिर्फ दो महीनों के लिए। सिविल में मकान ढूढ़ने की सलाह दी जाती है। इस कारण कई बार मिसेज कुमार का मनोबल टूटता है। मगर देश के प्रति, सेना के नियमों को प्रति विश्वास और आस्था अपनी जगह कायम है। मेजर कुमार का किसी बात पर 'हूं' कहना जिसका अर्थ कुछ भी हो सकता है, और जब मेजर कुमार की ब्रिगेड से मैसेज आता है, तब मिसेज शर्मा कहती है- *''अगर आ रहे हैं एक दिन रुक जाओ मीनू। अकेले वहां मुश्किल में पड़ जायेगी''* जवाब में मेजर कुमार की तरह मिसेज कुमार का 'हूं' कहना...इन दोनो 'हूं' में एक साम्यता है अपनेपन की जहां मिसेज कुमार का 'हूं' पूरी तरह से मेजर कुमार को समर्पित हूं, बल्कि यूं कहिये -मिसेज कुमार मेजर कुमारमाय हो गई है। यहां भी अपने परिवार के प्रति जिम्मेदारी जीवन के प्रति आस्था के रूप में व्यक्त होती ही है, साथ ही देश के प्रति भी।

इस तरह जीवन के हर क्षेत्र में चाहे आदर्श हो या यथार्थ, साहित्य हो या किसी भी कला का कोई भी पहलू हो या फिर जीवन की सच्चाई हो या कोरी कलपन.... अपनी-अपनी धुरी पर आस्था के समीकरण बदलते रहते हैं। फिर भी आस्था हर रंग में, हर रूप में नज़र आती है। यही जीवन का मूलस्वर है।

संपर्क
5/1003—1004, एकोलेड हाउसिंग सोसाइटी,,
मर्फी कम्पाउंड, हजूरी दर्गा रोड, ठाणे (महाराष्ट्र) — 400 604